774

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याणकारी दोहा-संग्रह

(गीताप्रेस-परिचयसहित)

गीताप्रेस, गोरखपुरके मुख्यद्वारपर विराजित श्रीकृष्णार्जुन

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

गीताप्रेस, गोरखपुरका संक्षिप्त परिचय

'गीताप्रेस' के संस्थापक ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय **श्रीजयदयालजी गोयन्दका** [सेठजी]-का जीवनव्रत था—गीता-प्रचार। उनकी मङ्गल अभिलाषा थी कि गीतासे जो प्रकाश उन्हें मिला है वह मानवमात्रको मिले। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये 'गीताप्रेस' की स्थापना विक्रम संवत् 1980 [सन् 1923 ई०] के मई महीनेमें हुई। गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाताके नामसे सोसाइटी पंजीयन अधिनियमके अन्तर्गत पंजीकृत गीताप्रेस आरम्भसे ही एक धार्मिक संस्थाके रूपमें प्रतिष्ठित रहा है।

इसका संचालन संस्थाके ट्रस्ट-बोर्डके नियन्त्रणमें होता है। गीताप्रेसका मुख्य कार्य सस्ते-से-सस्ते मूल्यपर सत्साहित्यका प्रचार और प्रसार करना है। पुस्तकोंके मूल्य प्राय: लागतसे कम रखे जाते हैं, परन्तु इसके लिये यह संस्था किसीसे किसी प्रकारका आर्थिक सहयोग स्वीकार नहीं करती।

मार्च 2019 तक गीताप्रेसके द्वारा विभिन्न संस्करणोंमें जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—उनकी संख्या इस प्रकार है—

१. श्रीमद्भगवद्गीता	**1413 लाख**
२. श्रीरामचरितमानस एवं तुलसी-साहित्य	**1087 लाख**
३. पुराण, उपनिषद् आदि ग्रन्थ	**252 लाख**
४. महिलाओं एवं बालकोपयोगी	**1096 लाख**
५. भक्तचरित्र एवं भजनमाला	**1627 लाख**
६. अन्य प्रकाशन	**1353 लाख**
	कुल— 68 करोड़ 28 लाख

गीताप्रेसके लगभग 1927 वर्तमान प्रकाशनोंमें लगभग 877 प्रकाशन संस्कृत एवं हिन्दीके हैं। शेष प्रकाशन मुख्यतया गुजराती,

मराठी, तेलुगु, बँगला, ओड़िआ, तमिल, कन्नड़, अंग्रेजी आदि भारतीय भाषाओंमें है। श्रीरामचरितमानस आदिका प्रकाशन नेपाली भाषामें भी है।

गीताप्रेसकी पुस्तकों एवं कल्याणका प्रचार 21 निजी थोक, 4 फुटकर पुस्तक दूकानों, 51 स्टेशन-स्टालों तथा हजारों पुस्तक-विक्रेताओंके माध्यमसे होता है।

'**कल्याण**', '**युग-कल्याण**' एवं '**Kalyana-Kalpataru**'—गीताप्रेस-द्वारा तीन मासिक पत्र 'कल्याण' तथा 'युग-कल्याण' हिन्दीमें एवं '**Kalyana-Kalpataru**' अंग्रेजीमें प्रकाशित किये जाते हैं।

'**कल्याण**' की वर्तमान समयमें लगभग 2,00,000 प्रतियाँ छपती हैं। वर्षका पहला अङ्क किसी विषयका विशेषाङ्क होता है। जनवरी 2019 का विशेषाङ्क—'**श्रीराधामाधव-अङ्क**' तथा जनवरी 2020 का विशेषाङ्क—'**बोधकथा-अङ्क**' है। 'कल्याण' भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म, सदाचार एवं साधन-सम्बन्धी सामग्रीद्वारा जन-जनको कल्याणके पथपर अग्रसरित करनेका निरन्तर प्रयास कर रहा है। दिसम्बर 2019 तक इसकी लगभग 16 करोड़ 17 लाख प्रतियाँ छप चुकी हैं।

'**Kalyana-Kalpataru**' के अबतक 65 विशेषाङ्क निकल चुके हैं। अक्टूबर 2019 का विशेषाङ्क—'**Nārāyaṇīyam**' है।

नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-ने आजीवन '**कल्याण**' एवं '**Kalyana-Kalpataru**' का सम्पादन-कार्य किया। महात्मा गांधीजीकी सम्मतिके अनुसार '**कल्याण**' एवं '**Kalyana-Kalpataru**' में आरम्भसे ही न तो कोई विज्ञापन छापा जाता है और न पुस्तकोंकी समालोचना ही की जाती है।

'गीताप्रेसका मुख्य द्वार' एवं 'लीला-चित्र-मन्दिर', गोरखपुरका एक महत्त्वपूर्ण दर्शनीय आकर्षण स्थल है। इसका उद्घाटन तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजीने अपने कर-कमलोंद्वारा 29 अप्रैल 1955 को किया था।

गीताप्रेस-मुख्य द्वार—गीताद्वारकी रचनाके प्रत्येक पादमें भारतीय संस्कृति, धर्म एवं कलाकी गरिमाको सन्निहित करनेका प्रयास किया गया है। इस मुख्य द्वारके निर्माणमें देशकी गौरवमयी प्राचीन कलाओं तथा विख्यात प्राचीन मन्दिरोंसे प्रेरणा ली गयी है और इनकी विभिन्न शैलियोंका आंशिकरूपमें दिग्दर्शन करानेका प्रयास किया गया है।

लीला-चित्र-मन्दिर—गीताप्रेसके लीला-चित्र-मन्दिरमें भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके रमणीय 684 चित्रोंके अतिरिक्त प्रतिभावान् चित्रकारोंद्वारा बनाये हुए अनेक हस्त-निर्मित चित्रोंका संग्रह है। चित्र-मन्दिरकी दीवालपर संगमरमरके पत्थरोंपर सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता एवं संत-भक्तोंके 700 से अधिक दोहे तथा वाणियाँ खुदी हुई हैं।

पुस्तकोंका प्रदर्शन—गीताप्रेस, गोरखपुरके मुख्यद्वारके सामने निर्मित वातानुकूलित पुस्तक-दूकानमें विभिन्न भाषाओंमें गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित पुस्तकोंके भव्य प्रदर्शन एवं बिक्रीकी व्यवस्था है।

संस्थाके अन्य कार्यकलाप

गीताभवन-स्वर्गाश्रम—पुण्यसलिला भगवती भागीरथी श्रीगङ्गाजीके तटपर स्थित गीताभवनमें दुर्लभ सत्सङ्गका नित्यप्रति आयोजन चलता है। यहाँपर 1000 से अधिक कमरे हैं जिसमें साधकोंके लिये आवास, नि:शुल्क आयुर्वेदिक चिकित्सा तथा कम मूल्यपर भोजन आदिकी व्यवस्था है। साधुओंको मुफ्त भोजन, वस्त्र आदि दिये जाते हैं। गंगातटपर श्रद्धालुओंद्वारा 31 अरब रामनामकी हस्तलिखित पुस्तिकाओंकी नींवपर बना रामनाम स्तम्भ आगन्तुक भक्तोंकी परिक्रमा एवं साधनाका एक सुन्दर स्थल है। यहाँपर बना कथा-स्थल तथा रमणीय घाटोंपर गंगास्नान, साधन एवं भजन आदिकी सुन्दर व्यवस्था है।

'गीताभवन-आयुर्वेद संस्थान' स्वर्गाश्रममें शुद्ध आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माण एवं स्वर्गाश्रम, कोलकाता, गोरखपुर, चूरू, सूरत आदि स्थानोंपर

निःशुल्क आयुर्वेदिक चिकित्साकी व्यवस्था है।

ऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान-) में प्राचीन पद्धतिके अनुसार ब्रह्मचारियोंके निःशुल्क शिक्षा, आवास, चिकित्सा आदिकी तथा अल्प मासिक शुल्कपर भोजनकी व्यवस्था है।

गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता—संस्थाके प्रधान कार्यालय, कोलकाताके विशाल सभागारमें नित्य गीता-पाठ और संत-महात्माओंके प्रवचनकी व्यवस्था है। यहाँ स्वप्रकाशित पुस्तकें, आयुर्वेदिक औषधियों एवं कपड़े आदि कुछ हिंसारहित शुद्ध वस्तुओंकी उचित मूल्यपर बिक्री करनेकी व्यवस्था है।

संस्थाके अन्य विभागोंमें **गीता-रामायण-परीक्षा-समिति, साधक-संघ, नाम-जप-विभाग** एवं **गीताप्रेस-हस्त-निर्मित-वस्त्र-विभाग** आदि हैं।

गीताप्रेस-सेवादल दुर्भिक्ष, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपदाओंमें पीड़ितोंकी यथासम्भव आवश्यक सेवा करता है।

गीताप्रेस-लीला-चित्र-मन्दिर-दोहावली

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिवर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन॥ १॥
नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन॥ २॥
गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥ ३॥
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥ ४॥
श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥ ५॥
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥ ६॥
एकु मैं मंद मोह बस कुटिल हृदयँ अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥ ७॥
बार बार बर मागउँ हरषि देउ श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥ ८॥
परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥ ९॥
नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥ १०॥

भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिंधु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥ ११॥
मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥ १२॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥ १३॥
नातो नाते राम कें राम सनेह सनेहु।
तुलसी माँगत जोरि कर जनम जनम सिव देहु॥ १४॥
राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन कें बिमल बिचार॥ १५॥
अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन॥ १६॥
प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम॥ १७॥
ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥ १८॥
व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥ १९॥
अस प्रभु दीन बंधु हरि कारनरहित दयाल।
तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल॥ २०॥
राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥ २१॥
प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम॥ २२॥
प्रनतपाल रघुनायक करुनासिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥ २३॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हिं दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥ २४॥
ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंदघन कर नर चरित उदार॥ २५॥
उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंदघन रघुनायक जहँ भूप॥ २६॥
भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥ २७॥
नील सरोरुह नील मनि नील नीर धर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥ २८॥
सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥ २९॥
मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास॥ ३०॥
काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूम केतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत॥ ३१॥
साहिब होत सरोष सेवक को अपराध सुनि।
अपने देखे दोष सपनेहुँ राम न उर धरे॥ ३२॥
तुलसी रामहि आपु तें सेवक की रुचि मीठि।
सीतापति से साहिबहि कैसे दीजै पीठि॥ ३३॥
हरे चरहिं तापहिं बरे फरें पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ॥ ३४॥
राम निकाईं रावरी है सबही को नीक।
जौं यह साची है सदा तौ नीको तुलसीक॥ ३५॥
नाम ललित लीला ललित ललित रूप रघुनाथ।
ललित बसन भूषन ललित ललित अनुज सिसु साथ॥ ३६॥

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥ ३७॥
निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥ ३८॥
बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी राम कृपालु को बिरद गरीब नेवाज॥ ३९॥
तुलसी कोसलपाल सो को सरनागत पाल।
भज्यो बिभीषन बंधु भय भंज्यो दारिद काल॥ ४०॥
बलकल भूषन फल असन तृन सज्या द्रुम प्रीति।
तिन्ह समयन लंका दई यह रघुबर की रीति॥ ४१॥
अबिचल राज बिभीषनहि दीन्ह राम रघुराज।
अजहुँ बिराजत लंक पर तुलसी सहित समाज॥ ४२॥
दंडक बन पावन करन चरन सरोज प्रभाउ।
ऊसर जामहिं खल तरहिं होइ रंक ते राउ॥ ४३॥
केवट निसिचर बिहग मृग किये साधु सनमानि।
तुलसी रघुबर की कृपा सकल सुमंगल खानि॥ ४४॥
मनि मानिक महँगे किये सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी एते जानिये राम गरीब नेवाज॥ ४५॥
बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥ ४६॥
एकु छत्रु एकु मुकुट मनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥ ४७॥
राम नाम मनि दीप धरु जीहँ देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥ ४८॥
सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥ ४९॥

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥ ५०॥
राम नाम नर केसरी कनक कसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥ ५१॥
कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥ ५२॥
स्वपच सबर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥ ५३॥
रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥ ५४॥
नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥ ५५॥
यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥ ५६॥
मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥ ५७॥
चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत।
रामनाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत॥ ५८॥
पय अहार फल खाइ जपु राम नाम षट मास।
सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास॥ ५९॥
हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम॥ ६०॥
सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं निर्गुन ते मन दूरि।
तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन मूरि॥ ६१॥
नाम रामको अंक है सब साधन हैं सून।
अंक गएँ कछु हाथ नहिं अंक रहें दस गून॥ ६२॥

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदासु॥ ६३॥
राम नाम जपि जीहँ जन भए सुकृत सुख सालि।
तुलसी इहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि॥ ६४॥
नाम गरीब निवाज को राज देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं घुरबिनिआ की बानि॥ ६५॥
मीठो अरु कठवति भरो रौताई अरु छेम।
स्वारथ परमारथ सुलभ राम नाम के प्रेम॥ ६६॥
रामनाम सुमिरत सुजस भाजन भए कुजाति।
कुतरुक सुरपुर राजमग लहत भुवन बिख्याति॥ ६७॥
स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम परमारथ न प्रबेस।
राम नाम सुमिरत मिटहिं तुलसी कठिन कलेस॥ ६८॥
मोर मोर सब कहँ कहसि तू को कहु निज नाम।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम॥ ६९॥
हम लखि लखहिं हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जपु नीच॥ ७०॥
राम नाम अवलंब बिनु परमारथ की आस।
बरषत बारिद बूँद गहि चाहत चढ़न अकास॥ ७१॥
तुलसी हठि हठि कहत नित चित सुनि हित करि मानि।
लाभ राम सुमिरन बड़ो बड़ी बिसारें हानि॥ ७२॥
बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥ ७३॥
प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम राम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम॥ ७४॥
दंपति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह।
तुलसी हर हित बरन सिसु संपति सहज सनेह॥ ७५॥

राम नाम कलि कामतरु राम भगति सुरधेनु।
सकल सुमंगल मूल जग गुरु पद पंकज रेनु॥ ७६॥
राम नाम कलि कामतरु सकल सुमंगल कंद।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग पग परमानंद॥ ७७॥
जथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास।
राम नाम सब धरममय जानत तुलसी दास॥ ७८॥
ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥ ७९॥
राम नाम पर नाम तें प्रीति प्रतीति भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल सगुन सुमंगल कोस॥ ८०॥
लंक बिभीषन राज कपि पति मारुति खग मीच।
लही राम सो नाम रति चाहत तुलसी नीच॥ ८१॥
हरन अमंगल अघ अखिल करन सकल कल्यान।
राम नाम नित कहत हर गावत बेद पुरान॥ ८२॥
तुलसी प्रीति प्रतीति सों राम नाम जप जाग।
किएँ होइ बिधि दाहिनो देहि अभागेहि भाग॥ ८३॥
जल थल नभ गति अमित अति अग जग जीव अनेक।
तुलसी तो से दीन कहँ राम नाम गति एक॥ ८४॥
राम भरोसो राम बल राम नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास॥ ८५॥
राम नाम रति राम गति राम नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल दुहुँ दिसि तुलसीदास॥ ८६॥
रसना साँपिनि बदन बिल जे न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि बिधाता बाम॥ ८७॥
हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्त्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥ ८८॥

रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पायँ।
तुलसी जिन्हहि न पुलक तनु ते जग जीवत जायँ॥ ८९॥
हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवइ हरिगुन सुनत।
कर न राम गुन गान जीह सो दादुर जीह सम॥ ९०॥
स्त्रवै न सलिल सनेहु तुलसी सुनि रघुबीर जस।
ते नयना जनि देहु राम! करहु बरु आँधरो॥ ९१॥
रहैं न जल भरि पूरि राम! सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि भरि भरि मूठी मेलिये॥ ९२॥
बारक सुमिरत तोहि होहि तिन्हहि सनमुख सुखद।
क्यों न सँभारहि मोहिं दयासिंधु दसरत्थ के॥ ९३॥
मोह मूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपासिंधु भगवान॥ ९४॥
काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥ ९५॥
तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥ ९६॥
श्रीरघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥ ९७॥
निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम॥ ९८॥
जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर॥ ९९॥
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि॥ १००॥
रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥ १०१॥

मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग।
कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग॥ १०२॥
सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग॥ १०३॥
पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥ १०४॥
सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब॥ १०५॥
बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥ १०६॥
अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥ १०७॥
भाव बस्य भगवान सुख निधान करुनाभवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीतारवन॥ १०८॥
हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥ १०९॥
सबइ कहावत राम के सबहि राम की आस।
राम कहहिं जेहि आपनो तेहि भजु तुलसीदास॥ ११०॥
उमा जे रामचरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥ १११॥
सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु रामपद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥ ११२॥
जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥ ११३॥
बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल॥ ११४॥

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन॥ ११५॥
विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते॥ ११६॥
रे मन सब सों निरस ह्वै सरस राम सों होहि।
भलो सिखावन देत है निसि दिन तुलसी तोहि॥ ११७॥
स्वारथ सीताराम सों परमारथ सिय राम।
तुलसी तेरो दूसरे द्वार कहा कहु काम॥ ११८॥
स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एकही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर॥ ११९॥
तुलसी स्वारथ राम हित परमारथ रघुबीर।
सेवक जाके लखन से पवनपूत रनधीर॥ १२०॥
ज्यों जग बैरी मीन को आप सहित बिनु बारि।
त्यों तुलसी रघुबीर बिनु गति आपनी बिचारि॥ १२१॥
राम प्रेम बिनु दूबरो राम प्रेमही पीन।
रघुबर कबहुँक करहुगे तुलसिहि ज्यों जल मीन॥ १२२॥
राम सनेही रामगति रामचरन रति जाहि।
तुलसी फल जग जनम को दियो बिधाता ताहि॥ १२३॥
आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम।
तेहि के पग की पानही तुलसी तनु को चाम॥ १२४॥
स्वारथ परमारथ रहित सीता राम सनेहँ।
तुलसी सो फल चारि को फल हमार मत एहँ॥ १२५॥
जे जन रूखे बिषय रस चिकने राम सनेहँ।
तुलसी ते प्रिय राम को कानन बसहिं कि गेहँ॥ १२६॥
जथा लाभ संतोष सुख रघुबर चरन सनेह।
तुलसी जो मन खूँद सम कानन बसहुँ कि गेह॥ १२७॥

तुलसी जौं पै राम सों नाहिन सहज सनेह।
मूँड़ मुड़ायो बादिहीं भाँड़ भयो तजि गेह॥ १२८॥
राम काम तरु परिहरत सेवत कलि तरु ठूँठ।
स्वारथ परमारथ चहत सकल मनोरथ झूँठ॥ १२९॥
निज दूषन गुन राम के समुझें तुलसीदास।
होइ भलो कलि कालहूँ उभय लोक अनयास॥ १३०॥
कै तोहि लागहिं राम प्रिय कै तू प्रभु प्रिय होहि।
दुइ मे रुचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि॥ १३१॥
तुलसी दुइ महँ एक ही खेल छाँड़ि छल खेलु।
कै करु ममता राम सों कै ममता परहेलु॥ १३२॥
तुलसी जौं लौं बिषय की मुधा माधुरी मीठि।
तौ लौं सुधा सहस्त्र सम राम भगति सुठि सीठि॥ १३३॥
जैसो तैसो रावरो केवल कोसलपाल।
तौ तुलसी को है भलो तिहूँ लोक तिहुँ काल॥ १३४॥
सत्य बचन मानस बिमल कपट रहित करतूति।
तुलसी रघुबर सेवकहि सकै न कलिजुग धूति॥ १३५॥
तुलसी सुखी जो राम सों दुखी सो निज करतूति।
करम बचन मन ठीक जेहिं तेहि न सकै कलि धूति॥ १३६॥
सब साधन को एक फल जेहिं जान्यो सो जान।
ज्यों त्यों मन मंदिर बसहिं राम धरें धनु बान॥ १३७॥
हित सों हित, रति राम सों, रिपु सों बैर बिहाउ।
उदासीन सब सों सरल तुलसी सहज सुभाउ॥ १३८॥
सूधे मन सूधे बचन सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति॥ १३९॥
सिला साप मोचन चरन सुमिरहु तुलसीदास।
तजहु सोच संकट मिटिहिं पूजिहि मन की आस॥ १४०॥

हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास॥ १४१॥
जौं घन बरषै समय सिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥ १४२॥
चातक तुलसी के मतें स्वातिहुँ पिऐ न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटें घटैगी आनि॥ १४३॥
रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग॥ १४४॥
चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख॥ १४५॥
बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिए चतुर चातकहि चूक॥ १४६॥
उपल बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥ १४७॥
मान राखिबो माँगिबो पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जौ चातक मत लेहु॥ १४८॥
तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही कें माथ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ॥ १४९॥
साधन साँसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु॥ १५०॥
चातक जीवन दायकहि जीवन समयँ सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति॥ १५१॥
जीव चराचर जहँ लगें है सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह॥ १५२॥
तुलसी चातक देत सिख सुतहिं बारहीं बार।
तात न तर्पन कीजिए बिना बारिधर धार॥ १५३॥

जिअत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि।
सुरसरिहू को बारि मरत न माँगेउ अरध जल॥ १५४॥
सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को॥ १५५॥
जाँचै बारह मास पिऐ पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही मेह मन॥ १५६॥
तुलसी के मत चातकहि केवल प्रेम पिआस।
पिअत स्वाति जल जान जग जाँचत बारह मास॥ १५७॥
राम कृपाँ तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान॥ १५८॥
रामचंद्र मुख चंद्रमा चित चकोर जब होइ।
राम राज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ॥ १५९॥
तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीताराम।
सगुन सुमंगल सुभ सदा आदि मध्य परिनाम॥ १६०॥
पुरुषारथ स्वारथ सकल परमारथ परिनाम।
सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीताराम॥ १६१॥
करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार॥ १६२॥
सबु करि माँगहिं एक फलु रामचरन रति होउ।
तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥ १६३॥
स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥ १६४॥
जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥ १६५॥
यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर।
को कृपाल बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर॥ १६६॥

कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥ १६७॥
बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निहकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥ १६८॥
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ १६९॥
उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥ १७०॥
बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥ १७१॥
सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥ १७२॥
बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥ १७३॥
खेलत बालक ब्याल सँग मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु ज्यों राखत सिय रघुनाथ॥ १७४॥
ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥ १७५॥
राम कथा सुरधेनु सम सेवत सब सुखदानि।
सत समाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि॥ १७६॥
जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥ १७७॥
कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुख मूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥ १७८॥
सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥ १७९॥

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं॥ १८०॥
मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास॥ १८१॥
रामचरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान॥ १८२॥
रामचरित राकेस कर सरस सुखद सब काह।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेष बड़ लाह॥ १८३॥
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥ १८४॥
निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुन मंदिर सुखपुंज॥ १८५॥
बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥ १८६॥
तुलसी रामहु तें अधिक राम भगत जियँ जान।
रिनिया राजा राम भे धनिक भए हनुमान॥ १८७॥
कियो सुसेवक धरम कपि प्रभु कृतग्य जियँ जानि।
जोरि हाथ ठाढ़े भए बरदायक बरदानि॥ १८८॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥ १८९॥
संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ॥ १९०॥
बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥ १९१॥
ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥ १९२॥

आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन॥ १९३॥
गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥ १९४॥
कहहिं बिमलमति संत बेद पुरान बिचारि अस।
द्रवहिं जानकी कंत तब छूटै संसार दुख॥ १९५॥
तुलसी देखत अनुभवत सुनत न समुझत नीच।
चपरि चपेटे देत नित केस गहे कर मीच॥ १९६॥
दिएँ पीठि पाछें लगै सनमुख होत पराइ।
तुलसी संपति छाँह ज्यों लखि दिन बैठि गँवाइ॥ १९७॥
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥ १९८॥
भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय रामपद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥ १९९॥
मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥ २००॥
जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥ २०१॥
सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥ २०२॥
नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥ २०३॥
राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥ २०४॥
काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जगु कालु न खाइ॥ २०५॥

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥ २०६॥
सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनि नाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥ २०७॥
तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥ २०८॥
काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि॥ २०९॥
दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥ २१०॥
हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाषंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥ २११॥
कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥ २१२॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥ २१३॥
भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥ २१४॥
सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥ २१५॥
सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥ २१६॥
फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥ २१७॥
ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥ २१८॥

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥ २१९॥
बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥ २२०॥
सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥ २२१॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥ २२२॥
जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥ २२३॥
औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥ २२४॥
श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि॥ २२५॥
ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाखंड॥ २२६॥
सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि॥ २२७॥
काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥ २२८॥
कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ॥ २२९॥
पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर॥ २३०॥
सोउ मुनि ग्यान निधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट॥ २३१॥

यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहु मोह न होइ॥ २३२॥
औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन॥ २३३॥
जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥ २३४॥
तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥ २३५॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥ २३६॥
एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥ २३७॥
तुलसी श्रीरघुबीर तजि करै भरोसो और।
सुखसंपति की का चली नरकहुँ नाहीं ठौर॥ २३८॥
तुलसी परिहरि हरि हरहि पाँवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहति होहिंगे गनिका के से पूत॥ २३९॥
तुलसी हरि अपमान तें होइ अकाज समाज।
राज करत रज मिलि गए सदल सकुल कुरु राज॥ २४०॥
सपने होय भिखारि नृप रंक नाकपति होय।
जागें लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोय॥ २४१॥
कहिबे कहँ रसना रचो सुनिबे कहँ किए कान।
धरिबे कहँ चित हित सहित परमारथहि सुजान॥ २४२॥
परमारथ पहिचानि मति लसति बिषयँ लपटानि।
निकसि चिता तें अधजरति मानहुँ सती परानि॥ २४३॥
जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥ २४४॥

पर सुख संपति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिनके भाग ते चलै भलाई भागि॥ २४५॥
तुलसी जे कीरति चहहिं पर की कीरति खोइ।
तिनके मुँह मसि लागिहै मिटिहि न मरिहैं धोइ॥ २४६॥
सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥ २४७॥
कलह न जानब छोट करि कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच गृह जरत धनिक धन धाम॥ २४८॥
रोष न रसना खोलिए बरु खोलिअ तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलिअ बचन बिचारि॥ २४९॥
पेट न फूलत बिनु कहें कहत न लागइ ढेर।
सुमति बिचारें बोलिऐ समुझि कुफेर सुफेर॥ २५०॥
लखइ अघानो भूख ज्यों लखइ जीति में हारि।
तुलसी सुमति सराहिये मग पग धरइ बिचारि॥ २५१॥
तुलसी असमय के सखा धीरज धरम बिबेक।
साहित साहस सत्यब्रत राम भरोसो एक॥ २५२॥
सहि कुबोल साँसति सकल अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिअ कहि करि गए सुजान॥ २५३॥
चलब नीति मग राम पग नेह निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिअ सो बसन जो न पखारें फीक॥ २५४॥
तुलसी सो समरथ सुमति सुकृती साधु सयान।
जो बिचारि ब्यवहरइ जग खरच लाभ अनुमान॥ २५५॥
सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥ २५६॥
तुलसी एहि संसार में भाँति भाँति के लोग।
सब सो हिलमिल बोलिए नदी नाव संयोग॥ २५७॥

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥ २५८॥
कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किये बहु पंथ॥ २५९॥
भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्याननिधि कहउँ कछुक कलिधर्म॥ २६०॥
असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥ २६१॥
ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥ २६२॥
भए बरनसंकर कलि भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग॥ २६३॥
श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥ २६४॥
सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड॥ २६५॥
तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान॥ २६६॥
सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।
गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार॥ २६७॥
कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥ २६८॥
कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥ २६९॥
प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥ २७०॥

सबइ कहावत राम के सबहि राम की आस।
राम कहहिं जेहि आपनो तेहि भजु तुलसीदास॥ २७१॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥ १॥
एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥ २॥
निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥ ३॥
उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥ ४॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥ ५॥
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना॥ ६॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥ ७॥
कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा॥ ८॥
अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती॥ ९॥

संत कबीर

आज कि काल्हि कि पाँच दिन जंगल होगा बास।
ऊपरि ऊपरि हल फिरै ढोर चरेगें घास॥ १॥
कबीर कहा गरबियौ काल गहै कर केस।
नाँ जानौं कहाँ मारसी कै घरि कै परदेस॥ २॥
कबीर कहा गरबियौ देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं ज्यूँ काँचली भुवंग॥ ३॥
कबिरा गर्ब न कीजिए ऊँचा देख अवास।
काल्ह परै भुँइ लेटना ऊपर जमिहै घास॥ ४॥
कबीर नौबति आपनी दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पट्टन ए गली बहुरि न देखहु आइ॥ ५॥
कबिरा यह तन जात है सकै तो राख बहोर।
खाली हाथों वे गए जिनके लाख करोर॥ ६॥

काँची काया मन अथिर थिर थिर काज करंत।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत त्यों त्यों काल हसंत॥ ७॥
झूँठे सुखको सुख कहैं मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना कालका कुछ मुख में कुछ गोद॥ ८॥
दस द्वारे का पींजरा तामे पंछी पौन।
रहिबे को आचरज है जाय तो अचरज कौन॥ ९॥
दुर्लभ मानुष जनम है देह न बारंबार।
तरवर ज्यों पत्ता झड़े बहुरि न लागै डार॥ १०॥
पानी केरा बुदबुदा अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात॥ ११॥
पाव पलक की सुध नहीं करै काल्ह का साज।
काल अचानक मारिहैं ज्यों तीतर को बाज॥ १२॥
कबिरा क्या मैं चिंतहूँ मम चिंते क्या होय।
मेरी चिंता हरि करैं चिंता मोहिं न कोय॥ १३॥
मरहिंगे मरि जाहिंगे नाँव न लेगा कोइ।
ऊजड़ जाइ बसाहिंगे छाड़ि बसंती लोइ॥ १४॥
माटी कहै कुम्हार को तूँ क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा मैं रूँदूँगी तोहिं॥ १५॥
यहु ऐसा संसार है जैसा सैंबल फूल।
दिन दसके ब्यौहार कौं झूठै रंगि न भूल॥ १६॥
या दुनिया में आइके छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सों लेइ ले उठी जात है पैंठ॥ १७॥
रात गँवाई सोय कर दिवस गँवाया खाय।
हीरा जनम अमोल था कौड़ी बदले जाय॥ १८॥
सातौ सबद जु बाजते घरि घरि होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े बैठन लागे काग॥ १९॥

हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी केस जलैं ज्यूँ घास।
सब तन जलता देखि करि भया कबीर उदास॥ २०॥
आतम अनुभव ग्यान की जो कोइ पूछै बात।
सो गूँगा गुड़ खाइ कै कहै कौन मुख स्वाद॥ २१॥
ज्यों गूँगे की सैन को गूँगा ही पहचान।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को ज्ञानी होय सो जान॥ २२॥
जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी ता मैं दो न समाहिं॥ २३॥
तन थिर मन थिर बचन थिर सुरत निरत थिर होय।
यह कबीर इस पलक को कलप न पावै कोय॥ २४॥
तूँ तूँ करता तूँ भया मुझ मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई जित देखौ तित तूँ॥ २५॥
मैं मैं बड़ी बलाय है सको तो निकसो भाग।
कह कबीर कब लग रहै रुई लपेटी आग॥ २६॥
समदृष्टी तब जानिए सीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा लखै एक सी होय॥ २७॥
सम दृष्टी सत गुरु किया दीया अबिचल ग्यान।
जहँ देखौं तहँ एक ही दूजा नाहीं आन॥ २८॥
आदि नाम निज सार है बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज नाम को अमर भयो सो बंस॥ २९॥
आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया छूटा बंधन मोह॥ ३०॥
कहता हूँ कहि जात हूँ सुनता है सब कोइ।
राम कहें भल होइगा नहिं तर भला न होइ॥ ३१॥
काम क्रोध मद लोभ की जब लग घट में खान।
कहा मूर्ख कहा पंडिता दोनों एक समान॥ ३२॥

छीर रूप सतनाम है नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोइ साध है तन का छाननहार॥ ३३॥
जबहिं नाम हिरदे धरा भया पाप का नास।
मानौ चिनगी आग की परी पुराने घास॥ ३४॥
जल ज्यों प्यारा माछरी लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका भक्त पिआरा नाम॥ ३५॥
जहाँ काम तहँ राम नहिं जहाँ राम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलैं रबि रजनी इक ठाम॥ ३६॥
जाकी गाँठी नाम है ताके है सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबै आठ सिद्धि नौ निद्धि॥ ३७॥
जाके पूँजी नाम है कबहुँ न होवै हानि।
नाम बिहीना मानवा जम के हाथ बिकानि॥ ३८॥
जिनकै नौबति बाजती मैगल बँधते बारि।
एक हरी के नाम बिन गए जन्म सब हारि॥ ३९॥
जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस पुनि रसना नहिं राम।
ते नर इहि संसार में उपजि बये बेकाम॥ ४०॥
नींद निसानी मीच की उट्ठु कबीरा जाग।
और रसायन छाँड़ि कै नाम रसायन लाग॥ ४१॥
मोर तोर की जेवरी बटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे जाके नाम अधार॥ ४२॥
राम नाम निज औषधी काटै कोटि बिकार।
बिषम ब्याधि थी ऊबरै काया कंचन सार॥ ४३॥
राम पिआरा छाँड़ि करि करै आन का जाप।
बेस्याँ केरा पूत ज्यूँ कहैं कौन को बाप॥ ४४॥
लूटि सकै तो लूटि ले सत्त नाम की लूटि।
पाछे फिर पछताहुगे प्रान जाहिं जब छूटि॥ ४५॥

सभी रसायन हम करी नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै सब तन कंचन होय॥ ४६॥
हंसा पय को काढ़ि ले छीर नीर निरवार।
ऐसे गहै जो सार को सो जन उतरै पार॥ ४७॥
आँखड़ियाँ झाईं पड़ी पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या राम पुकारि पुकारि॥ ४८॥
कबीर सुमिरन सार है और सकल जंजाल।
आदि अंत सब सोधिया दूजा देखौं काल॥ ४९॥
कबीर सूता क्या करै गुन गोबिंद के गाइ।
तेरे सिर परि जम खड़ा खरच कदे का खाइ॥ ५०॥
कबीर सूता क्या करे जागि न जपै मुरारि।
एक दिना है सोवना लंबे पाँव पसारि॥ ५१॥
कबीर सूता क्या करै सूताँ होइ अकाज।
ब्रह्मा का आसन खिस्या सुनत काल की गाज॥ ५२॥
केसौ कहि कहि कूकिये ना कूकियै असार।
राति दिवस कै कूकणौं कबहूँ लगै पुकार॥ ५३॥
दुख में सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै तो दुख काहे को होय॥ ५४॥
नाम जपत कुष्ठी भला चुइ चुइ परै जु चाम।
कंचन देह केहि काम की जा मुख नाहीं नाम॥ ५५॥
नाम जो रत्ती एक है पाप जो रती हजार।
आध रती घट संचरै जारि करै सब छार॥ ५६॥
नाम रतन धन पायकै गाँठि बाँध वा खोल।
नाहीं पन नहिं पारखू नहिं पारख नहिं मोल॥ ५७॥
भगति भजन हरि नाव है दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा करमना कबीर सुमिरन सार॥ ५८॥

माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुख माहिं।
मनुआँ तो चहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं॥ ५९॥
लव लागी तब जानिये छूटि कभू नहिं जाय।
जीवत लव लागी रहै मूए ताँहि कमाय॥ ६०॥
सुमिरन की सुधि यों करै जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं निस दिन आठों जाम॥ ६१॥
सुमिरन सुरत लगाइके मुख ते कछू न बोल।
बाहर के पट देइके अंतर के पट खोल॥ ६२॥
पौ फाटी पगरा भया जागे जीवा जून।
सब काहू को देत है चोंच समाता चून॥ ६३॥
साईं तुझ से बाहिरा कौड़ी नाहिं बिकाय।
जाके सिर पर तू धनी लाखो मोल कराय॥ ६४॥
क्या मुख लै बिनती करौं लाज लगत है मोहिं।
तुम देखत अवगुन करौं कैसे भावों तोहिं॥ ६५॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते क्या लागत है मोर॥ ६६॥
मैं अपराधी जनम का नखसिख भरा बिकार।
तुम दाता दुखभंजना मेरी करो सम्हार॥ ६७॥
मो में इतनी सक्ति कहँ गावों गला पसार।
बंदे को इतनी घनी पड़ा रहै दरबार॥ ६८॥
साहेब तुम जनि बीसरो लाख लोग लगि जाहिं।
हमसे तुमरे बहुत हैं तुम सम हमरे नाहिं॥ ६९॥
साहेब सों सब होत हैं बंदे तें कछु नाहिं।
राई ते पर्बत करे पर्बत राई माहिं॥ ७०॥
इस तन का दीवा करौं बाती मेलूँ जीव।
लोही सीचूँ तेल ज्यूँ कब मुख देखौं पीव॥ ७१॥

जब लगि भक्ति सकाम है तब लग निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिलै निःकामी निज देव॥ ७२॥
जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की साँस लेत बिनु प्रान॥ ७३॥
नैना नीझर लाइया रहट बहै निस जाम।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं कबहु मिलहुगे राम॥ ७४॥
पीया चाहै प्रेम रस राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग देखा सुना न कान॥ ७५॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय॥ ७६॥
प्रेम पियाला जो पियै सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै नाम प्रेम का लेय॥ ७७॥
भक्ति गेंद चौगान की भावै कोइ लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहिं कहा रंक कह राय॥ ७८॥
बिन रखवाले बाहिरा चिड़ियैं खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै चेति सकै तौ चेत॥ ७९॥
सोवों तो सुपने मिलै जागौं तो मन माहिं।
लोयन राता सुधि हरी बिछुरत कबहूँ नाहिं॥ ८०॥
गुरु गोबिंद दोऊ खड़े काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोबिंद दियो बताय॥ ८१॥
तन मन ताकों दीजिए जाके बिषया नाहिं।
आपा सबहीं डारि कै राखै साहेब माहिं॥ ८२॥
नरवर सरवर संतजन चौथे बरसै मेह।
परमारथ के कारने चारों धारें देह॥ ८३॥
सब धरती कागद करूँ लेखनि सब बनराय।
सात समुँद की मसि करूँ गुरु गुन लिखा न जाय॥ ८४॥

साधू ऐसा चाहिऐ जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय॥ ८५॥
कबिरा संगत साधु की ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं तौ भी बास सुबास॥ ८६॥
धन जननी धन भूमि धन धन नगरी धन देस।
धन करनी धन सकुल धन जहाँ साधु परबेस॥ ८७॥
साध कहावन कठिन है लंबा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस गिरै तो चकना चूर॥ ८८॥
साध बड़े परमारथी घन ज्यौं बरसे आय।
तपन बुझावैं और की अपनो पारस लाय॥ ८९॥
साधू गाँठि न बाँधई उदर समाता लेय।
आगे पाछे हरि खड़े जब माँगे तब देय॥ ९०॥
साधू भूखा भाव का धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै सो तो साधू नाहिं॥ ९१॥
संत न छोड़े संतई कोटिक मिलै असंत।
मलया भुँवगहि बेधिआ सीतलता न तजंत॥ ९२॥
एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय।
जो तू सेवै मूल को फूलै फलै अघाय॥ ९३॥
कथनी मीठी खाँड़-सी करनी बिष की लोय।
कथनी तजि करनी करै बिष से अमृत होय॥ ९४॥
कबीर खेति किसान का मिरगौं खाया झाड़ि।
खेत बिचारा क्या करै जो खसम न करई बारि॥ ९५॥
कबिर छुधा है कूकरी करत भजन में भंग।
ताको टुकड़ा डारि कै सुमिरन करो निसंक॥ ९६॥
कबीर हँसना दूरि करि करि रोवन सौं चित्त।
बिन रोये क्यूँ पाइए प्रेम पियारा मित्त॥ ९७॥

गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान॥ ९८॥
चाह गई चिंता मिटी मनुआँ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये सोई साहंसाह॥ ९९॥
जहाँ दया तहँ धर्म है जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है जहाँ छिमा तहँ आप॥ १००॥
जाको राखै साइयाँ मारि न सकिहैं कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय॥ १०१॥
जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजै जो मन आवे ठौर॥ १०२॥
जो तोको काँटा बुवै ताहि बोय तू फूल।
तोहि फूल को फूल है वाको है तिरसूल॥ १०३॥
दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय।
बिना जीवकी स्वाँस से लोह भसम ह्वै जाय॥ १०४॥
निंदक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करै सुभाय॥ १०५॥
प्रभुता को सब कोइ भजै प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय॥ १०६॥
पतिबरता मैली भली काली कुचित कुरूप।
पतिबरताके रूप पर वारौं कोटि सरूप॥ १०७॥
बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना मुझ-सा बुरा न होय॥ १०८॥
मन के मते न चालिये मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है सो साधू कोइ एक॥ १०९॥
साईं से साँचा रहौ साईं साँच सुहाय।
भाँवै लंबे केस रख भाँवै घोट मुँड़ाय॥ ११०॥

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है ता हिरदे गुरु आप॥ १११॥
सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की कटि उँजियारा होय॥ ११२॥
सूरा के तो सिर नहीं दाता के धन नाहिं।
पतिबरताके तन नहीं सुरति बसै पिउ माहिं॥ ११३॥
ज्ञान रतन की कोठरी चुप करि दीन्हों ताल।
पारखि आगे खोलिए कुंजी बचन रसाल॥ ११४॥
आवत गारी एक है उलटत होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिए वही एक की एक॥ ११५॥
ऐसी बानी बोलिये मनका आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपहुँ सीतल होय॥ ११६॥
औगुन को तो ना गहै गुनही को लै बीन।
घट घट मँहकै मधुप ज्यों परमातम लै चीन॥ ११७॥
कबिरा नवै सो आप को पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिए नवै सो भारी होय॥ ११८॥
करनी बिन कथनी कथै अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूँकत फिरै सुनी सुनाई बात॥ ११९॥
काँच कथीर अधीर नर ताहि न उपजै प्रेम।
कह कबीर कसनी सहै कै हीरा कै हेम॥ १२०॥
कामी क्रोधी लालची इन तें भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा जाति बरन कुल खोय॥ १२१॥
कुटिल बचन सब से बुरा जारि करै तन छार।
साध बचन जल रूप है बरसै अमृत धार॥ १२२॥
देखा देखी भक्तिका कबहु न चढ़ती रंग।
बिपति पड़े यों छाँड़सी ज्यों केंचुली भुजंग॥ १२३॥

सोना सज्जन साधुजन टूटि जुरै सौ बार।
दुर्जन कुंभ कुँभार के एकै धका दरार॥ १२४॥
हीरा तहाँ न खोलिये जहँ खोटी है हाट।
कस करि बाँधो गाँठरी उठ कर चालो बाट॥ १२५॥
हीरा परा बजारमें रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए पारखि लिया उठाय॥ १२६॥

संत दादूदयालजी

क्या मुँह ले हँसि बोलिये दादू दीजै रोइ।
जनम अमोलक आपणा चले अकारथ खोइ॥ १॥
जे सिर सौंप्या राम कौं सो सिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरिण भया जिसका तिसके हाथ॥ २॥
दादू नीका नाम है हरि हिरदै न बिसार।
मूरत मन माहीं बसै साँसै साँस सभार॥ ३॥
सुख का साथी जगत सब दुख का नाहीं कोइ।
दुख का साथी साइयाँ दादू सतगुरु होइ॥ ४॥

संत सुन्दरदासजी

राम नाम जाके हिये ताहि नवें सब कोय।
ज्यों राजा के संक तें सुंदर अति डर होय॥ १॥
सुंदर सबही संत मिलि सार लियौ हरि नाम।
तक्र तजी घृत काढ़ि कै और क्रिया केहि काम॥ २॥
सुंदर तो साँई भजै तजै आन की आस।
ताहि न कबहूँ परिहरै पलक न छाँड़ै पास॥ ३॥
सुंदर भजिये राम कौं तजिये माया मोह।
पारस के परसे बिना दिन-दिन छीजै लोह॥ ४॥

संत पलटू साहेब

पलटू ऐसी प्रीति करु ज्यों मजीठ को रंग।
टूक टूक कपड़ा उड़ै रंग न छोड़ै संग॥ १॥
दुष्ट मित्र सब एक हैं ज्यों कंचन त्यों काँच।
पलटू ऐसे दासको सपने लगै न आँच॥ २॥

संत दरिया

दरिया नर तन पाय कर कीया चाहै काज।
राव रंक दोनों तरैं जो बैठे नाम जहाज॥ १॥
लोह पलट कंचन भया करि पारस को संग।
दरिया परसै नामकौं सहजहिं पलटै अंग॥ २॥

सहजो

जब चेतै जब ही भला मोह नींद सूँ जाग।
साधू की संगति मिलै सहजो ऊँचे भाग॥ १॥
ना सुख दारा सुत महल ना सुख भूप भये।
साधु सुखी सहजो कहै तृस्ना रोग गये॥ २॥
बैठ बैठ बहुतक गये जग तरुवर की छाँहि।
सहज बटाऊ बाट के मिलि मिलि बिछुरत जाहिं॥ ३॥

रहीम

अमर बेलि बिनु मूल की प्रति पालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि खोजत फिरिए काहि॥ १॥
गहि सरनागति राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार का और न कछू उपाव॥ २॥
माँगे मुकरि न को गयो केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ॥ ३॥

रन बन ब्याधि बिपत्ति में रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर सो हरि गये कि सोय॥ ४॥
रहिमन को कोउ का करै ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखन हार हैं माखन चाखन हार॥ ५॥
जिहि रहीम मन आपनो कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यों रहै कृष्णाचंद्र की ओर॥ ६॥
रहिमन मनहिं लगाइ के देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा नारायन बस होय॥ ७॥
ऊगत जाही किरन सो अथवत ताही काँति।
त्यों रहीम सुख दुख सबै बढ़त एक ही भाँति॥ ८॥
कदली सीप भुजंग मुख स्वाँति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये तैसोई फल दीन॥ ९॥
जो रहीम मन हाथ है तो तन कहुँ किन जाहि।
जल में जो छाया परे काया भीजत नाहि॥ १०॥
टूटे सुजन मनाइये जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोइये टूटे मुक्ताहार॥ ११॥
कागद को सो पूतरा सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो सोऊ खैंचत बाय॥ १२॥
काह कामरी पामणी जाड़ गये से काज।
रहिमन भूख बुताइये कैसो मिलै अनाज॥ १३॥
जो बिषया संतन तजी मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर स्वान स्वाद सों खात॥ १४॥
धन दारा अरु सुतन सो लगो रहे नित चित्त।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो गाढ़े दिन को मित्त॥ १५॥
भार झोंकि के भार में रहिमन उतरे पार।
पै बूड़े मँझधार में जिनके सिर पर भार॥ १६॥

सौदा करो सो करि चलो रहिमन याही घाट।
फिर सौदा पैहो नहीं दूरि जान है बाट॥ १७॥
जे सुलगे ते बुझि गये बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के बुझि बुझि कै सुलगाहिं॥ १८॥
धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि कहा भौर की भाय॥ १९॥
मथत मथत माखन रहै दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है भीर परै ठहराय॥ २०॥
रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिले मिले गाँठ पड़ जाय॥ २१॥
छिमा बड़ेन को चाहिये छोटिन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात॥ २२॥
जे गरीब पर हित करें ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो कृष्ण-मिताई जोग॥ २३॥
तरुवर फल नहिं खात हैं सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम पर काज हित संपति सँचहि सुजान॥ २४॥
दीन सबन को लखत है दीनहि लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै दीनबंधु सम होय॥ २५॥
रहिमन पर उपकार के करत न यारी बीच।
मांस दियो शिबि भूप ने दीन्हों हाड़ दधीच॥ २६॥
देनहार कोउ और है भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरें याते नीचे नैन॥ २७॥
निज कर क्रिया रहीम कहि सिधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में दाँव न अपने हाथ॥ २८॥
काज परै कछु और है काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भए नदी सिरावत मौर॥ २९॥

गुन ते लेत रहीम जन सलिल कूप तें काढ़ि।
कूपहु तें कहुँ होत है मन काहू को बाढ़ि॥ ३०॥
जो रहीम ओछो बढ़ै तो अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जाय॥ ३१॥
बड़े बड़ाई ना करैं बड़े न बोले बोल।
रहिमन हीरा कब कहे लाख टका मेरो मोल॥ ३२॥
रहिमन करि सम बल नहीं मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै चलत घिसावत नाक॥ ३३॥
रहिमन चुप ह्वै बैठिये देखि दिनन को फेर।
जब नीकै दिन आइहैं बनत न लगिहै देर॥ ३४॥
रहिमन निज मन की बिथा मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहै कोय॥ ३५॥
रहिमन पानी राखिये बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे मोती मानुष चून॥ ३६॥
रहिमन प्रीति न कीजिये जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला भीतर फाकें तीन॥ ३७॥
रहिमन वित्त अधर्मको जरत न लागै बार।
चोरी करि होरी रची भई तनिक में छार॥ ३८॥
रहिमन बिपदा हू भली जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय॥ ३९॥
समय पाय फल होत है समय पाय झरि जात।
सदा रहे नहिं एक सी का रहीम पछितात॥ ४०॥
समय लाभ सम लाभ नहिं समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी समय चूक की हूक॥ ४१॥
रहिमन गली है साँकरी दूजो ना ठहराहि।
आपु अहै तो हरि नहीं हरि तो आपुन नाहि॥ ४२॥

श्रीनारायण स्वामीजी

गुन मंदिर सुंदर जुगल मंगल मोद निधान।
नारायन निज चरन रति यह दीजै बरदान॥ १॥
चलत फिरत बैठत उठत लगी रहै यह आस।
स्याम राधिका निरखिबो बृंदा बिपिन निवास॥ २॥
जनम मरन से रहित है नारायण करतार।
हरि भक्तन के हेत सो लेत मनुज अवतार॥ ३॥
निज स्वारथ के मीत सब यही जगत की चाल।
नारायन स्वारथ बिना हितू नंद को लाल॥ ४॥
मकराकृत कुंडल श्रवन झाईं परत कपोल।
रूप सरोवर माहिं द्वै, मछरी करत कलोल॥ ५॥
मोर मुकुट की निरखि छबि लाजत मदन करोर।
चन्द्र बदन सुख सदन पै भावक नैन चकोर॥ ६॥
रतिपति छबि निंदित बदन नील जलज सम स्याम।
नव यौवन मृदु हास वर रूप रासि सुख धाम॥ ७॥
अति कृपालु संतोष ब्रत जुगल चरन मैं प्रीत।
नारायन ते संतबर कोमल बचन बिनीत॥ ८॥
उदासीन जग सौं रहै यथा मान अपमान।
नारायन ते संत जन निपुन भावना ध्यान॥ ९॥
जिनको मन निज बस भयो तजकर बिषय बिलास।
नारायन ते घर रहौ, चहें करो बन बास॥ १०॥
जिन कौ मन हरि पद कमल निसि दिन भ्रमर समान।
नारायन तिन सों मिलें कबहुँ न होवै हान॥ ११॥
जिन संतनके दरस सों नारायन अघ जात।
तिनैं कहत ये फिरत हैं घर घर टुकड़े खात॥ १२॥

जिनैं प्रेम प्यालौ पियौ झूमत तिनके नैन।
नारायन वा रूप मद छकै रहैं दिन रैन॥ १३॥
तजि पर औगुन नीर कौं छीर गुनन सौ प्रीति।
हंस संत की सर्बदा नारायन यह रीति॥ १४॥
तनक मान मन में नहीं, सबसौं राखत प्यार।
नारायन ता संत पै, बार बार बलिहार॥ १५॥
नारायन जो कृपा करि संत पधारै धाम।
आगे ते उठि प्रीति सौं कीजै दंड प्रनाम॥ १६॥
नारायन ढिग संत के, गये न होत बिगार।
ज्यों बिन मोल सुगन्धिता, मिलै समीप अतार॥ १७॥
कपट गाँठि मन मैं नहीं सब सौं सरल सुभाव।
नारायन ता भक्त की लगी किनारे नाव॥ १८॥
कबू हँसै रोवै कबू नाचत करि गुन गान।
नारायन सुधि तन नहीं लग्यौ प्रेम कौ बान॥ १९॥
कह्यो चहै कछु कहत कछु नयन नीर सुरभंग।
नारायन बौरौ भयौ लग्यौ प्रेम कौ रंग॥ २०॥
गुन गावै गोपाल के भरि लावै दृग नीर।
नारायन नहिं कल परै बिन देखै बलबीर॥ २१॥
जाके मन मैं बसि रही मोहन की मुसिक्यान।
नारायन ताके हियै और न लागत ग्यान॥ २२॥
जाके मन यह छबि बसी सोवत हूँ बर्रात।
नारायन कुंडल निकट अद्भुत अकल सुहात॥ २३॥
जिनको पूरन भक्ति है, ते सब सों आधीन।
नारायन तजि मान मद, ध्यान सलिल के मीन॥ २४॥
देह गेह की सुधि नहीं टूटि गई जग प्रीत।
नारायन गावत फिरै प्रेम भरै रस गीत॥ २५॥

धरत कहूँ पग परत कित सुरति नहीं इक ठौर।
नारायन प्रीतम बिना दीखत नहिं कछु और॥ २६॥
नारायन हरि भक्त की प्रथम यही पहचान।
आप अमानी ह्वै रहै देत और कौं मान॥ २७॥
पर हित-प्रीति उदार चित, बिगत दंभ मद रोष।
नारायन दुख में लखै, निज कर्मन कौ दोष॥ २८॥
मगन रहे नित भजन में, चलत न चाल कुचाल।
नारायन ते जानिये, यह लालन के लाल॥ २९॥
संत जगत में सो सुखी मैं मेरी का त्याग।
नारायन गोबिंद पद दृढ़ राखत अनुराग॥ ३०॥
नर संसारी लगन में दुख सुख सहैं करोर।
नारायन हरि प्रीति में जो होवै सो थोर॥ ३१॥
नारायन अति कठिन है हरि मिलिबे की बाट।
या मारग तब पग धरै प्रथम सीस दै काट॥ ३२॥
नारायन घाटी कठिन जहाँ नेह को धाम।
बिकल मूरछा सिसकिबौ, ये मग के बिश्राम॥ ३३॥
नारायन जप जोग तप सब सौं प्रेम प्रवीन।
प्रेम हरी कूँ करत है प्रेमी के आधीन॥ ३४॥
नारायन जाके दृगन सुंदर स्याम समाय।
फूल पात फल डार मैं ताकूँ वही दिखाय॥ ३५॥
नारायन जाके हियै उपजत प्रेम प्रधान।
प्रथमहिं बाकी हरत है लोक लाज कुल कान॥ ३६॥
नारायन जाके हियै लगी प्रेम की रौर।
ताही कौ जीवन सुफल दिन काटैं सब और॥ ३७॥
नारायन तब जानियै लगन लगी या काल।
जित तित मैं दृष्टी परैं दीखै मोहनलाल॥ ३८॥

नारायन प्रीतम निकट सोई पहुँचन हार।
गेंद बनावै सीस की खेलै बीच बजार॥ ३९॥
नारायन यह प्रेम सुख मुख सों कह्यौ न जाय।
ज्यौं गूँगौ गुड़ खात है सैनन स्वाद लखाय॥ ४०॥
नारायन या डगर में कोउ चलत है बीर।
पग पग पै बरछी लगै स्वास स्वास में तीर॥ ४१॥
नारायन या प्रेम कौ नद उमड़त जा ठौर।
पल मैं लाज म्रजाद के तट काटत है दौर॥ ४२॥
नारायन हरि प्रीति मैं जाकौ तन मन चूर।
ताहि न ममता और सौं निकट रहो वा दूर॥ ४३॥
नारायन हरि लगन मैं यह पाँचौं न सुहात।
विषय भोग निद्रा हँसी जगत प्रीति बहु बात॥ ४४॥
नेम धर्म धीरज समझ सोच विचार अनेक।
नारायन प्रेमी निकट इन में रहै न एक॥ ४५॥
नेह डगर में पग धरै, फेरि बिचारै लाज।
नारायन नेही नहीं बातन को महराज॥ ४६॥
परा भक्ति या कौं कहैं जित तित स्याम दिखात।
नारायन सो ग्यान है पूरन ब्रह्म लखात॥ ४७॥
प्रेम खेल सब सौं कठिन खेलत कोउ सुजान।
नारायन बिन प्रेम के कहा प्रेम पहचान॥ ४८॥
प्रेम सहित अँसुवन भरै धरै जुगल कौ ध्यान।
नारायन ता भक्त कौं जग मैं दुरलभ जान॥ ४९॥
प्रेमसहित गदगद गिरा कहत न मुख सों बात।
नारायन महबूब बिन, और न कछू सुहात॥ ५०॥
ब्रह्मादिकके भोग सुख बिष सम लागत ताहि।
नारायन ब्रजचंद की लगन लगी है जाहि॥ ५१॥

भक्ति कल्पतरु पात गुन कथा फूल बहु रंग।
नारायन हरि प्रेम फल चाहत संत बिहंग॥ ५२॥
भयौ बावरौ प्रेम मैं डोलत गलियन माहिं।
नारायन हरि लगन मैं यह कछु अचरज नाहिं॥ ५३॥
मन मैं लागी चटपटी कब निरखूँ घनस्याम।
नारायन भूल्यौ सभी खान पान विश्राम॥ ५४॥
रूप छके झूमत रहैं तन को तनक न ग्यान।
नारायन दृग जल भरे यही प्रेम पहचान॥ ५५॥
लगन लगन सब ही कहैं लगन कहावै सोय।
नारायन जा लगन मैं तन मन दीजे खोय॥ ५६॥
लगन लगी गोपाल की भूली तन की सार।
नारायन मछली भयो स्याम रूप जल धार॥ ५७॥
लतन तरै ठाढ़ो कबूँ कबहूँ जमुना तीर।
नारायन नयनन बसी मूरति स्याम सरीर॥ ५८॥
सुनत न काहू की कही, कहै न अपनी बात।
नारायन वा रूप मैं मगन रहै दिन रात॥ ५९॥
सो क्यौं सेवै बाग बन गुल्म लता तरु मूल।
नारायन जाके हृदय फूल रह्यो वह फूल॥ ६०॥
है न्यारो सब पंथ ते प्रेम पंथ अभिराम।
नारायन या मैं चलत बेगि मिलै पिय धाम॥ ६१॥
अपनो साखी आप तू निज मन माहिं बिचार।
नारायन जो खोट है ताकूँ तुरत निकार॥ ६२॥
कथनी कथ केते गये कर्म उपासन ग्यान।
नारायन चारों जुगन करनी है परमान॥ ६३॥
कोऊ नहिं अपनौ सगौ बिन राधा गोपाल।
नारायन तू बृथा मति परै जगत के जाल॥ ६४॥

चार दिनन की चाँदनी यह संपति संसार।
नारायन हरि भजन कर जासों होय उबार॥ ६५॥
जो सिर साटै हरि मिलैं तो पुनि लीजै दौर।
नारायन ऐसी न हो गाहक आवै और॥ ६६॥
तेरे भावैं कछु करौ भलो बुरौ संसार।
नारायन तू बैठि के अपनौ भवन बुहार॥ ६७॥
दो बातन कों भूल मति जो चाहत कल्यान।
नारायन इक मौत कूँ दूजे श्रीभगवान॥ ६८॥
धन विद्या गुन आयु बल यह न बड़प्पन देत।
नारायन सोई बड़ो जाको हरि सो हेत॥ ६९॥
नारायन तू भजन कर कहा करेंगे कूर।
अस्तुति निंदा जगत की दोउन के सिर धूर॥ ७०॥
नारायन तौ का भयौ पाये नयन बिसाल।
नयन वही जिन मैं बसे श्रीराधा गोपाल॥ ७१॥
नारायन दो बात कौ दीजै सदा बिसार।
करी बुराई और ने आप कियौ उपकार॥ ७२॥
नारायन दो बात सौं अधिक और नहिं बात।
रसिकन कौ सतसंग नित जुगल ध्यान दिन रात॥ ७३॥
नारायन परलोक मैं यह दो आवत काम।
देना मुट्ठी अन्न की लेना भगवत नाम॥ ७४॥
नारायन बिन बोध के पंडित पसू समान।
तासों अति मूरख भलो जो सुमिरै भगवान॥ ७५॥
नारायन या जगत मैं यह दो बस्तू सार।
सब सौं मीठो बोलिबौ करिबौ पर उपकार॥ ७६॥
नारायन सतसंग कर सीख भजन की रीति।
काम क्रोध मद लोभ मैं गई आयु बर बीति॥ ७७॥

नारायन सुख भोग मैं मस्त सभी संसार।
कोऊ मस्त वा मौज मैं देख्यौ आँख पसार॥ ७८॥
नारायन हरि कृष्ण की तकत रहै नित बाट।
जानहार जिमि पार कौ निरखत नौका घाट॥ ७९॥
नारायन हरि भजन मैं तू जिन देर लगाय।
का जानै या देर मैं स्वास रहै कै जाय॥ ८०॥
पुन्य पाठ पूजा प्रगट करत सहित हंकार।
नारायन रीझै नहीं चतुरन को सरदार॥ ८१॥
बहु विधि पूजा दान ब्रत करत गरब के साथ।
नारायन बिन दीनता द्रवै न दीनानाथ॥ ८२॥
बाँट खाय हरि कौ भजै तजै सकल अभिमान।
नारायन ता पुरुष कौ उभय लोक कल्यान॥ ८३॥
बृंदाबन में बास कर साग पात नित खात।
तिनके भागिन को निरख ब्रह्मादिक ललचात॥ ८४॥
मन लाग्यौ सुख भोग मैं तरन चहै संसार।
नारायन कैसे बने दिवस रैन कौ प्यार॥ ८५॥
रच्छा करी न जीव की दियो न आदर दान।
नारायन ता पुरुष सौं रूख भलौ फलवान॥ ८६॥
रे मन क्यों भटकत फिरत भज श्रीनंदकुमार।
नारायन अबहूँ समझ भयौ न कछू बिगार॥ ८७॥
लखी न निज छबि स्याम की कियौ न पल भर ध्यान।
नारायन ते जगत मैं प्रगट निपट पाषान॥ ८८॥
विद्या वित्त स्वरूप गुन सुत दारा सुख भोग।
नारायन हरि भक्ति बिन यह सब ही है रोग॥ ८९॥
संत दरस की लालसा नारायन जो होय।
रीते कर नहिं जाइये फूल पत्र फल तोय॥ ९०॥

संत सभा झाँकी नहीं कियो न हरि गुन गान।
नारायन फिर कौन विधि तूं चाहत कल्यान॥ ९१॥
कुंभकरन दसकंठ से नारायन रनधीर।
भये सकल भट काल बस जिनके कुलिस सरीर॥ ९२॥
गज तुरंग रथ सेन अति निसि दिन जिनके द्वार।
नारायन सो अब कहाँ देखौ आँख पसार॥ ९३॥
चटक मटक नित छैल बन तकत चलत चहुँ ओर।
नारायन यह सुधि नहीं आज मरैं कै भोर॥ ९४॥
चंद बदन, मृग सम नयन, गति गयंद, मृदु बोल।
नारायन हरि भक्ति बिन, यह कौड़ी के मोल॥ ९५॥
धन जोबन यौं जायगा जा बिधि उड़त कपूर।
नारायन गोपाल भज क्या चाटे जग धूर॥ ९६॥
नारायन जब अन्त में यम पकरैंगे बाँह।
तिन सों भी कहियो हमें अभी सोफतो नाँह॥ ९७॥
नारायन जिनके भवन बिधि सम भोग बिलास।
अन्त समय सब छाँड़ि कें भये काल के ग्रास॥ ९८॥
नारायन नव खंड में निरभय जिनकौ राज।
ऐसे विदित महीप जग ग्रसै काल महराज॥ ९९॥
नारायन निज हाथ पै जे नर धरत सुमेर।
सोउ बीर या भूमि पै भये राख के ढेर॥ १००॥
नारायन सुख भोग मैं तूं लंपट दिन रैन।
अंत समय आयो निकट देख खोल के नैन॥ १०१॥
नारायन संसार मैं भूपति भये अनेक।
मैं मेरी करते रहे ले न गये तृन एक॥ १०२॥
बहुत गई थोरी रही नारायन अब चेत।
काल चिरइया चुँग रही निस दिन आयू खेत॥ १०३॥

प्रेमशतकसे

जिनको हिय नित हँसि रह्यो, हेरि-हेरि हरि रूप।
कबहूँ ते न पलटि परैं, सोकरूप भव कूप॥ १॥
एक नेम यह प्रेम को नेम सबै छुटि जाहिं।
पै जो छाँड़ै जानि के तहाँ प्रेम कछु नाहिं॥ २॥
कहि न जाय मुख सौं कछू स्याम प्रेम की बात।
नभ जल थल चर अचर सब स्यामहिं स्याम लखात॥ ३॥
कूदि पड़ै जो सूरमा प्रेमसिंधु के माँहि।
परम अमोलक रतन हरि पावै संसय नाहिं॥ ४॥
को कासों केहि बिधि कहा कहै हृदय की बात।
हरि हेरत हिय हरि गयो हरि सर्वत्र लखात॥ ५॥
जग में चार प्रसिद्ध हैं सेव्य परम पुरुषार्थ।
पंचम हरि को प्रेम है परम मधुर परमार्थ॥ ६॥
जिनके दृग हरि रँग रँगे हिय हरि रहे समाय।
नभ, जल, अवनि, अनिल, अनल, सब में स्याम दिखाय॥ ७॥
जिनके दृग हेरत सदा हरि मूरति चहुँ ओर।
तिनके चित कबहुं न बसत काम-मोह-मद-चोर॥ ८॥
जो चाहै हरि-प्रेम कौं राग-भोग दे त्याग।
निसदिन प्रेमी सँग करै तब बाढ़ै अनुराग॥ ९॥
जो तू चाहे प्रेमधन बिषयन सों मुख मोड़।
श्रद्धा तत्परता सहित चित्त भजन में जोड़॥ १०॥
जो प्यासे हरि-प्रेम के तिन के निर्मल भाव।
तन मन धन अर्पण करैं धरैं मुक्ति को दाव॥ ११॥
तीन लोक की संपदा इन्द्र भवन को राज।
प्रेमी तृन सम लखत तेहि तजत प्रेम के काज॥ १२॥

दुर्लभ झाँकी प्रेम की जिन झाँकी ते धन्य।
उपजत बिनसत जगत में जड़ पसु सम सब अन्य॥ १३॥
दंभी द्रोही स्वारथी बादी मानी पाँच।
ये खल नाँहिन सहि सकैं प्रेम-अगिनि की आँच॥ १४॥
प्रेम-अनल कूदै वही जो मन बे परवाह।
जियन मरन भावें नहीं नहीं सरगकी चाह॥ १५॥
प्रेम अनल जेहि जिय जरत जारत तीनहु ताप।
सुद्ध स्वर्ण आसन अमल आइ बिराजत आप॥ १६॥
प्रेम अमिय चाहै पियौ करै विषय सों नेह।
विष ब्यापै जारै हियौ करै जर्जरित देह॥ १७॥
प्रेम डगर सोई चलै अगर मगर दे छोड़।
विषय राग राखै नहीं सब सों नातो तोड़॥ १८॥
प्रेम-देव के दरस तें सब बंधन कटि जाय।
ममता मान सबै नसै उर अति आनँद छाय॥ १९॥
प्रेम-पंथ अति ही विकट देखत भाजैं लोग।
कोउक बिरले चलि सकैं जिन त्यागे सब भोग॥ २०॥
प्रेम-पंथ पर पग धरै करै जगत को सोच।
तिनको मन अति मलिन है बुद्धि निपट ही पोच॥ २१॥
प्रेम-पंथ सोइ चलि सकैं जिन छाँड़ी सब चाह।
जल्यो करैं बिरहाग में मुख नहिं निकसे आह॥ २२॥
प्रेम पयोनिधि परत ही पवि-सम भयो सरीर।
काम-कटक भाज्यो सबै तजि निज तरकस तीर॥ २३॥
प्रेम-बान बेध्यौ हियौ घायल भयौ अचेत।
एक राम में रमि गयो दुरयो विषय को खेत॥ २४॥

प्रेम सदा बढ़िबौ करै ज्यों ससि कला सुबेष।
पै पूनौ यामें नहीं तातें कबहुँ न सेष॥ २५॥
प्रेम-सिंधु कूदत डरै करै जगत की याद।
सो डूबै भवसिंधु में जीवन करि बरबाद॥ २६॥
प्रेम हृदय की बस्तु है परम गुह्य अनमोल।
कथनी में आवै नहीं सकै न कोऊ तोल॥ २७॥
भव बारिधि तरिबो चहै गहै बिषय की नाव।
डूबै सों मझधार ही तनिक न लागै दाव॥ २८॥
मन विषयनि में रमि रह्यो करत प्रेम की बात।
सो मिथ्यावादी सदा जग में आवत जात॥ २९॥
मोहन की मधुरी हँसी बसी हृदयमें जाय।
माया ममता अघ अनल तेहि हिय नाहिं समाय॥ ३०॥
रसमय आनँदमय बिमल दुर्लभ यह उन्माद।
अकथनीय, पै अति मधुर गूँगेको-सो स्वाद॥ ३१॥
राग सोक भय कामना मान मोह मद क्रोध।
प्रेम राज्य प्रबिसै नहीं अरि आठों निर्बोध॥ ३२॥
रँग्यौ सदा जाको हियौ, बिमल स्याम अनुराग।
दूजौ रँग कबहुँ न चढ़ै भयौ सहज बैराग॥ ३३॥
स्वर्ग मोक्ष चाहैं नहीं चाहै नंदकिसोर।
सुघड़ सलोनो साँवरो मुरलीधर मन-चोर॥ ३४॥
सप्त स्वर्ग के सुख सकल बिष सम देवै त्याग।
नहीं चाह अपबर्ग की (सो) पावै प्रभु अनुराग॥ ३५॥
संत-बैद्य सेवन करै कड़वी औषध खाय।
भोग रोग राखै नहीं तभी प्रेम प्रकटाय॥ ३६॥
हरि-छबि-हबि आहुति हिये ज्यों-ज्यों लागत जात।
प्रेम अनल त्यों-त्यों अतिहि अधिकाधिक सुलगात॥ ३७॥

फुटकर

अंध भया सब डोलई यह नहिं करै बिचार।
हरी भक्ति जाने बिना बूड़ि मुआ संसार॥ १॥
अपनी पहुँच बिचारि कै करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर॥ २॥
अर्ब खर्ब लों दर्ब है उदय अस्त लौं राज।
भक्ति महातम ना तुलै ये सब कौने काज॥ ३॥
आप करै उपकार अति प्रति उपकार न चाह।
हियरो कोमल संत सम सुहृद सोइ नरनाह॥ ४॥
उछल कुपथ जो खल चलहि परत तुरत मुख बाय।
सोध सोध मग पग धरहिं सो न कबहुँ पछिताय॥ ५॥
उत्तम जन सों मिलत ही अवगुन हू गुन होय।
घन सँग खारो उदधि मिलि बरसै मीठो तोय॥ ६॥
कठिन काल ग्रह ग्रसित तनु साधन कछुक न होय।
यह बिचारि बिस्वास कर हरि सुमिरे बुध सोय॥ ७॥
कनक कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वहि खाये बौराय जग यहि पाये बौराय॥ ८॥
करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें सिल पर परत निसान॥ ९॥
करै बुराई सुख चहै कैसे पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक को आम कहाँ ते होइ॥ १०॥
करो त्याग नाना कपट मन हरिपद अनुराग।
सेवत बीते काल बहु महामोह निसि जाग॥ ११॥
काम क्रोध अरु लोभ मद मिथ्या छल अभिमान।
इन से मन को रोकिबो साँचो ब्रत पहिचान॥ १२॥

कारज धीरे होतु है काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै केतिक सींचो नीर॥ १३॥
ग्रंथ पंथ सब जगत के बात बतावत तीन।
राम हृदय मन में दया तन सेवा में लीन॥ १४॥
गिरह गाँठ नहिं बाँधते जब देवे तब खाहिं।
गोबिंद तिनके पाछें फिरें मत भूखे रह जाहिं॥ १५॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै बाहर बाहै चोट॥ १६॥
चार वेद षट शास्त्र में बात मिली है दोय।
दुख दीने दुख होत है सुख दीने सुख होय॥ १७॥
चींटी से हस्ती तलक जितने लघु गुरु देह।
सब कों सुख दैबो सदा परम भक्ति है येह॥ १८॥
छमा खड्ग लीने रहै खल को कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल आपहि ते बुझि जाय॥ १९॥
जगत पसारा देख के मन को नाहिं डुलाय।
माया मोहक जाल यह प्रभुजी सो चित लाय॥ २०॥
जग माहीं ऐसे रहौ ज्यौं अम्बुज सर माहिं।
रहै नीर के आसरे पै जल छूवत नाहिं॥ २१॥
जब लग घट में प्रान हैं तब लगि प्रभु न बिसार।
नारायण को ध्यान धर पल पल नाम चितार॥ २२॥
जब लग नाता जगत का तब लगि भक्ति न होय।
नाता तोड़ै हरि भजै भक्त कहावै सोय॥ २३॥
जब लौं सुमिरे ना हरी जो संतन के मीत।
बहु दिन बिनती में नहीं गये बृथा सब बीत॥ २४॥
जिन खोज्या तिन पाइया पारब्रह्म घट माहिं।
यह जग बौरा हौ रह्या जो इत उत ढूँढ़न जाहिं॥ २५॥

जिहि घर निंदा साधु की सो घर गये समूल।
तिनकी नीव न पाइये नाँव न ठाँव न धूल॥ २६॥
जीवहु तें प्यारें अधिक लागैं मोहीं राम।
बिनु हरि नाम नहीं मुझे और किसी से काम॥ २७॥
जैसे बंधन प्रेम को तैसो बंध न और।
काठहि भेदै कमल को छेद न निकसै भौंर॥ २८॥
जो जल बाढ़े नाव में घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिए यहि सज्जन को काम॥ २९॥
तन पवित्र सेवा किये धन पवित्र कर दान।
मन पवित्र हरि भजन कर होत त्रिविध कल्यान॥ ३०॥
तन मन धन कर कीजिये निसि दिन पर उपकार।
यही सार नर देह में बाद बिबाद बिसार॥ ३१॥
तनहिं राखु सतसंग में मनहिं प्रेम रस भेव।
सुख चाहत हरिबंस हित कृष्ण कल्पतरु सेव॥ ३२॥
तात मात तुम्हरे गये तुम भी भये तयार।
आज काल में ही चलौ दया होहु हुसियार॥ ३३॥
दया नम्रता दीनता छिमा सील संतोष।
इन कूँ लै सुमिरन करै निहचै पावै मोख॥ ३४॥
नाम बिना बेकाम है छप्पन कोटि बिलास।
का इन्द्रासन बैठिबो का बैकुंठ निवास॥ ३५॥
नाम लिया तब जानिये जब तन मन रहै समाय।
आदि अंत मथ एकरस कबहूँ भूलि न जाय॥ ३६॥
प्रिय भाषण पुनि नम्रता आदर प्रीति विचार।
लज्जा क्षमा अयाचना ये भूषण उर धार॥ ३७॥
पावक बैरी रोग रिन सेसहु रखिये नाहिं।
ए थोरे हूँ बढ़हिं पुनि महा जतन सो जाहिं॥ ३८॥

पुन्य करिय सो नहिं कहिय पाप करिय परकास।
कहिबे सों दोउ घटत हैं बरनत गिरिधर दास॥ ३९॥
पुनि श्रीमुख गीता विषे भास्यो अर्जुन पास।
योग-क्षेम सब हौं करौं जिनको मेरी आस॥ ४०॥
फेर न ह्वैहै कपट सों जौं कीजे व्यौपार।
जैसे हाँडी काठ की चढ़ै न दूजी बार॥ ४१॥
बहुरि पलट आवत नहीं छिन छिन बीतत जाहि।
समय अमित अनमोल है समझ करो व्यय ताहि॥ ४२॥
बहुत दिनन की जोवती बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुव मिलन कूँ मन नाहीं बिश्राम॥ ४३॥
बहुत निबल मिल बल करैं करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी करी निबन्धन होय॥ ४४॥
बुरे लगत सिख के बचन हिये बिचारो आप।
करुवी भेषज बिन पिये मिटै न तन की ताप॥ ४५॥
भक्ति भेष बहु अंतरा जैसे धरनि अकास।
भक्त लीन गुरु चरन में भेष जगत की आस॥ ४६॥
भली करत लागति बिलम बिलम न बुरे बिचार।
भवन बनावत दिन लगै ढाहत लगत न बार॥ ४७॥
भोग वासना सब तजै तजै मान सनमान।
प्रेम-पंथ पर जो चलै सहै हृदय पर बान॥ ४८॥
मन की दुबिधा ना मिटै मुक्ति कहाँ ते होइ।
कौड़ी बदले नानका जन्म चल्या नर खोइ॥ ४९॥
मणिगण उजलहि शान चढ़ ज्यों अति मोल बिकाय।
सुधरहिं बुद्धि विवेक हो उत्तम शिक्षा पाय॥ ५०॥
मान धाम धन नारि सुत इन में जो न असक्त।
परमहंस तिहिं जानिये घरही माहिं बिरक्त॥ ५१॥

माया सगी, न मन सगा, सगा न यह संसार।
परसराम या जीव का सगा सो सिरजनहार॥ ५२॥
या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रँग त्यों-त्यों उज्जल होय॥ ५३॥
रहे समीप बड़ेन के होत बड़ो हित मेल।
सबही जानत बढ़त है वृक्ष बराबर बेल॥ ५४॥
राम नाम मिसरी पियें दूर जाहिं सब रोग।
सुन्दर औषध कटुक सब जप तप साधन जोग॥ ५५॥
लगी लगन छूटै नहीं जीभ चोंच जरि जाय।
मीठो कहा अँगार में जाहि चकोर चबाय॥ ५६॥
लघुता ते प्रभुता मिलै प्रभुता ते प्रभु दूरि।
चींटी लै सक्कर चली हाथी के सिर धूरि॥ ५७॥
विद्या पढ़हिं विनय करहिं तजहिं बृथा अभिमान।
चलहिं सतकुलाचरन पर ते नर अति सुज्ञान॥ ५८॥
साधु संग में सुख बड़ो जो करि जाने कोय।
आधो छिन सतसंग को कलमख डारे खोय॥ ५९॥
सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसो सदा बिहारी लाल॥ ६०॥
सुख मैं सँग मिलि सुख करै दुख मैं पाछो होय।
निज स्वारथ की मित्रता मित्र अधम है सोय॥ ६१॥
सुंदर पंछी बिरछ पर लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये त्यों कुटुम्बि सब जानि॥ ६२॥
सुरग नरक संसय नहीं जिवन मरन भय नाहिं।
राम बिमुख जे दिन गये सो सालैं मन माहिं॥ ६३॥
सेवा को दोनों भले एक संत एक राम।
राम जो दाता मुक्ति का संत जपावे नाम॥ ६४॥

श्रोता तो घर ही नहीं बक्ता बदै सो बाद।
श्रोता बक्ता एक घर तब कथनी को स्वाद॥ ६५॥
श्वास श्वास भूले नहीं हरि का भय अरु प्रेम।
यही परम जय जानिये देत कुसल अरु क्षेम॥ ६६॥
सीस सफल संतनि निमे हाथ सफल हरि सेव।
पाद सफल सत्संग गत तब पावे कछु भेव॥ ६७॥
हरि-सा हीरा छाँड़ि कै करे आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे सत भाषै रैदास॥ ६८॥
ज्ञानी जन न्यारो रहे ऐसी विधि जग माहिं।
ज्यों अम्बुज जलमें रहे जल को परसत नाहिं॥ ६९॥
दीरघ साँस न लेइ दुख सुख साईं मति भूल।
दई दई क्यों करत है दई दई सु कबूल॥ ७०॥
सपनेहुँ में बर्राइके धोखेहुँ निकरे राम।
वाके पग की पैंतरी मेरे तन को चाम॥ ७१॥

॥ श्रीहरि: ॥

गीताभवन-दोहा-संग्रह

चार वेद षट शास्त्रमें, बात मिली है दोय।
दुख दीने दुख होत है, सुख दीने सुख होय॥ १॥
ग्रंथ पंथ सब जगतके, बात बतावत तीन।
राम हृदय, मनमें दया, तन सेवामें लीन॥ २॥
तन मन धन दै कीजिये, निशि दिन पर उपकार।
यही सार नर देहमें, वाद-विवाद बिसार॥ ३॥
चींटीसे हस्ती तलक, जितने लघु गुरु देह।
सबकौं सुख देबो सदा, परमभक्ति है येह॥ ४॥
काम क्रोध अरु लोभ मद, मिथ्या छल अभिमान।
इनसे मनकौं रोकिबो, साँचौं व्रत पहिचान॥ ५॥
श्वास श्वास भूले नहीं, हरिका भय अरु प्रेम।
यही परम जय जानिये, देत कुशल अरु क्षेम॥ ६॥
मान धाम धन नारि सुत, इनमें जो न असक्त।
परमहंस तिहिं जानिये, घर ही माहिं विरक्त ॥ ७॥
प्रिय भाषण पुनि नम्रता, आदर प्रीति विचार।
लज्जा क्षमा अयाचना, ये भूषण उर धार॥ ८॥
शीश सफल संतनि नमें, हाथ सफल हरि सेव।
पाद सफल सतसंग गत, तब पावै कछु भेव॥ ९॥
तनु पवित्र सेवा किये, धन पवित्र कर दान।
मन पवित्र हरि भजन कर, होत त्रिविध कल्यान॥ १०॥
धिक मानस तनु भक्ति बिन, धिक मति बिना बिबेक।
विद्या धिक निष्ठा बिना, धिक सुख बिन हरि टेक॥ ११॥
विद्या बल धन रूप यश, कुल सुत वनिता मान।
सभी सुलभ संसारमें, दुर्लभ आतमज्ञान॥ १२॥

प्रिय भाषी शीतल हृदय, संयम सरल उदार।
जो जन ऐसो जगतमें, तासों सबको प्यार॥ १३॥
पूरण भय जगदीशको, जाके मनमें होय।
गुप्त प्रगट भीतर बहिर, पाप करत नहिं सोय॥ १४॥
सत्य बचन आधीनता, परतिय मात समान।
इतनेमें हरि ना मिलें, तुलसीदास जमान॥ १५॥
राम नाम जपते रहो, जब लगि घटमें प्रान।
कबहुँक दीनदयालके, भनक परैगी कान॥ १६॥
दया धर्मका मूल है, नरक मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाँड़िये, जब लगि घटमें प्रान॥ १७॥
श्रीरघुबीर प्रताप तें, सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥ १८॥
कबीर यह तन जात है, सकै तो राख बहोर।
खाली हाथों वे गये, जिनके लाख करोर॥ १९॥
मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कह कबीर कब लग रहै, रुई लपेटी आग॥ २०॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुख होय॥ २१॥
कबीर यह तनु जात है, सकै तो ठौर लगाय।
कै सेवा कर साधुकी, कै हरिके गुण गाय॥ २२॥
उज्ज्वल पहिने कापड़ा, पान सुपारी खाय।
कबीर हरिकी भक्ति बिन, बाँधा यमपुर जाय॥ २३॥
मनुष जन्म दुर्लभ अति, होत न बारंबार।
तरुवर सों पत्ता झड़े, बहुरि न लागे डार॥ २४॥
कबीर सब जग निरधना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सो जानिये, जाके रामनाम धन होय॥ २५॥
सौ पापनका मूल है, एक रुपैया रोक।
साधु होय संग्रह करै, मिटै न संशय शोक॥ २६॥

मर जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तनुके काज।
परमारथके कारने, मोहिं न आवे लाज॥ २७॥
करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर जिमि भूसत फिरे, सुनी सुनायी बात॥ २८॥
तुलसी या जग आयकै, पाँच रतन हैं सार।
संतमिलन अरु हरि भजन, दया, दीन उपकार॥ २९॥
संत समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय।
दारा सुत अरु लक्ष्मी, पापीके भी होय॥ ३०॥
बहुत गई थोरी रही, नारायण अब चेत।
काल चिरैया चुग रही, निशि दिन आयू खेत॥ ३१॥
धन जोबन यों जायगो, जा बिधि उड़त कपूर।
नारायण गोपाल भज, क्यों चाटे जग धूर॥ ३२॥
नारायण संसारमें, भूपति भये अनेक।
मैं मेरी करते रहे, लै न गए तृन एक॥ ३३॥
तेरे भावैं जो करो, भलौ बुरौ संसार।
नारायण तू बैठकै, अपनौ भवन बुहार॥ ३४॥
नारायण सतसंग कर, सीख भजनकी रीत।
काम क्रोध मद लोभमें, गई आर्बल बीत॥ ३५॥
धन विद्या गुण आयु बल, ये न बड़प्पन देत।
नारायण सोई बड़ो, जाको हरिसों हेत॥ ३६॥
नारायण हरि भजनमें, तू जनि देर लगाय।
का जाने या देरमें, श्वासा रहे कि जाय॥ ३७॥
नारायण बिन बोधके, पंडित पसू समान।
तासों अति मूरख भलो, जो सुमिरे भगवान॥ ३८॥
नारायण जब अंतमें, जम पकरेंगे बाँहिं।
तिनसों भी कहियो हमें, अभी सोफतौ नाहिं॥ ३९॥
मन लाग्यौ सुख-भोगमें, तरन चहै संसार।
नारायण कैसे बनै, दिवस रैनिकौ प्यार॥ ४०॥

काम क्रोध मद लोभको, लगी हियेमें आग।
नारायण वैराग भट, सहित ज्ञान गए भाग॥ ४१॥
विद्यावंत सुरूप गुण, सुत दारा अरु भोग।
नारायण हरि भक्ति बिन, ये सब ही हैं रोग॥ ४२॥
संत सभा झाँकी नहीं, कियौ न हरि गुन गान।
नारायण फिर कौन बिधि, तू चाहत कल्यान॥ ४३॥
नारायण सुख भोगमें, मस्त सभी संसार।
कोउ मस्त वा मौजमें, देखौ आँख पसार॥ ४४॥
नारायण या जगत्में, यह दो वस्तू सार।
सबसों मीठो बोलिबो, करिबो पर उपकार॥ ४५॥
नारायण परलोकमें, ये दो आवत काम।
देना मुट्ठी अन्नकी, लेना भगवत नाम॥ ४६॥
बाँट खाय हरिको भजै, तजै सकल अभिमान।
नारायण ता पुरुषको, उभय लोक कल्यान॥ ४७॥
नारायण दो बातको, दीजै सदा बिसार।
करी बुराई औरने, आप कियौ उपकार॥ ४८॥
दो बातनको भूल मत, जो चाहै कल्यान।
नारायण इक मौतको, दूजे श्रीभगवान॥ ४९॥
ता पर अवगुण नीरको, क्षीर गुणन सों प्रीत।
हंस संतकी सर्वदा, नारायण यह रीत॥ ५०॥
तनक मान मनमें नहीं, सबसों राखत प्यार।
नारायण ता संत पै, बार बार बलिहार॥ ५१॥
अति कृपालु संतोष बृति, जुगल चरणमें प्रीत।
नारायण ते संत बर, कोमल बचन विनीत॥ ५२॥
मगन रहैं नित भजनमें, चलत न चाल कुचाल।
नारायण ते जानिये, ये लालन के लाल॥ ५३॥
पर हित प्रीति उदारचित, विगत दंभ मद रोष।
नारायण दुखमें लखै, निज कर्मनकौ दोष॥ ५४॥

संत जगतमें सो सुखी, मैं मेरीकौ त्याग।
नारायण गोबिन्द पद, दृढ़ राखत अनुराग॥ ५५॥
जिनके पूरण भक्ति है, ते सबसों आधीन।
नारायण तज मान मद, ध्यान सलिलके मीन॥ ५६॥
नारायण हरि भक्तिकी, प्रथम यही पहिचान।
आप अमानी ह्वै रहै, देत औरको मान॥ ५७॥
कपट गाँठ मनमें नहीं, सबसों सरल सुभाव।
नारायण ता भक्तकी, लगी किनारे नाव॥ ५८॥
जिनको मन हरिपद कमल, निसिदिन भ्रमर समान।
नारायण तिनसों मिलैं, कबहुँ न होवे हानि॥ ५९॥
नारायण जो करि कृपा, सन्त पधारैं धाम।
आगेसे उठि प्रीति सों, कीजे दंड प्रनाम॥ ६०॥
नारायण हरि कृपाकी, तकत रहै नित बाट।
जानहार जिमि पारको, निरखत नौका घाट॥ ६१॥
चाह मिटी चिंता गई, मनुवा बेपरवाह।
जाको कछू न चाहिये, सोई साहनसाह॥ ६२॥
नारायण होवै भले, जो कछु होवनहार।
हरिसों प्रीति लगायकै, अब कहा सोच बिचार॥ ६३॥
नारायण अति कठिन है, हरि मिलिबैकी बाट।
या मारग तब पग धरे, प्रथम शीश दै काट॥ ६४॥
नेह डगरमें पग धरै, फेर बिचारै लाज।
नारायण नेही नहीं, बातनको महाराज॥ ६५॥
गढ़ गढ़के बातें कहै, मनमें तनक न प्रीत।
नारायण कैसे मिलैं, साहब साँचे मीत॥ ६६॥
लगन लगन सबही कहैं, लगन कहावै सोय।
नारायण जा लगनमें, तन मन दीजै खोय॥ ६७॥
जो सिर साँटे हरि मिलैं, तौ पुनि लीजै दौर।
नारायण ऐसी न हो, गाहक आवै और॥ ६८॥

नारायण हरि लगनमें, यह पाँचों न सुहात।
विषयभोग, निद्रा, हँसी, जगतप्रीत, बहु बात॥ ६९॥
प्रेम सहित अँसुवन ढरै, धरै जुगलको ध्यान।
नारायण ता भक्तको, जगमें दुर्लभ जान॥ ७०॥
नारायण जाके हिये, उपजत प्रेम प्रधान।
प्रथमहिं वाकी हरत है, लोक-लाज, कुल-कान॥ ७१॥
नारायण जप जोग तप, सबसों प्रेम प्रबीन।
प्रेम हरीको करत है, प्रेमीके आधीन॥ ७२॥
नारायण यह प्रेम सुख, मुखसों कह्यौ न जाय।
ज्यों गूँगौ गुड़ खात है, सैनन स्वाद लखाय॥ ७३॥
प्रेम खेल सबसों कठिन, खेलत कोउ सुजान।
नारायण बिन प्रेमके, कहा प्रेम पहिचान॥ ७४॥
प्रेम पियाला जिन पिया, झूमत तिनके नैन।
नारायण वा रूपमें, छके रहैं दिन रैन॥ ७५॥
नारायण जाके हृदय, लगी प्रेमकी रौर।
ताही कौ जीवन सफल, दिन काटैं सब और॥ ७६॥
नेम धरम धीरज समझ, सोच विचार अनेक।
नारायण प्रेमी निकट, इनमें रहै न एक॥ ७७॥
रूप छके झूमत रहैं, तनकौ तनिक न ज्ञान।
नारायण दृग जल भरें, यही प्रेम पहिचान॥ ७८॥
है न्यारो सब पंथ ते, प्रेम पंथ अभिराम।
नारायण यामें चलत, वेग मिलै पिय धाम॥ ७९॥
मनमें लागी चटपटी, कब निरखूँ घनश्याम।
नारायण भूल्यो सभी, खानपान बिश्राम॥ ८०॥
सुनत न काहूकी कही, कहै न अपनी बात।
नारायण वा रूपमें, मगन रहै दिन रात॥ ८१॥
देह गेहकी सुध नहीं, टूट गई जग प्रीत।
नारायण गावत फिरै, प्रेम भरे रस गीत॥ ८२॥

धरत कहूँ पग परत कित, सुरत नहीं इक ठौर।
नारायण प्रीतम बिना, दीखत नहिं कछु और॥ ८३॥
भयौ बावरौ प्रेममें, डोलत गलियन माहिं।
नारायण हरि लगनमें, यह कछु अचरज नाहिं॥ ८४॥
प्रेमसहित गदगद गिरा, कहत न मुख सों बात।
नारायण महबूब बिन, और न कछू सुहात॥ ८५॥
कह्यौ चहै कछु कहत कछु, नैन नीर स्वर भंग।
नारायण बौरौ भयौ, लग्यौ प्रेमकौ रंग॥ ८६॥
कबहुं हँसै रोवै कबहुँ, नाचत करि गुणगान।
नारायण तन सुधि नहीं, लग्यो प्रेमकौ बान॥ ८७॥
नारायण जाके दृगन, सुन्दर श्याम समाय।
फूल पात फल डारमें, ताकौं वही दिखाय॥ ८८॥
ब्रह्मादिकके भोग सुख, बिष सम लागत ताहि।
नारायण व्रजचंदकी, लगन लगी है जाहि॥ ८९॥
नारायण हरि प्रीतमें, जाकौ तन मन चूर।
ताहि न ममता और सों, निकट रहौ वा दूर॥ ९०॥
गुण गावै गोपालके, भर लावै दृग नीर।
नारायण नहिं कल परै, बिन देखे बलबीर॥ ९१॥
जाके मनमें बसि रही, मोहनकी मुसक्यान।
नारायण ताके हिये, और न लागत ज्ञान॥ ९२॥
नारायण तब जानिये, लगन लगी या काल।
जित तितमें दृष्टी परै, दीखै मोहनलाल॥ ९३॥
नारायण दो बात सों, अधिक और नहिं बात।
रसिकनकौ सतसंग नित, जुगल ध्यान दिन रात॥ ९४॥
नहिं ऐसौ कोइ जगतमें, कठिन कठिनतर काम।
जो यथार्थ बल बुद्धि ते, हो न सिद्ध परिणाम॥ ९५॥
बहुरि पलट आवत नहीं, छिन छिन बीतत जाहि।
समय अमित अनमोल है, समझ करौ व्यय ताहि॥ ९६॥

जन्म मरणसे रहित है, नारायण करतार।
हरि भक्तनके हेत सों, लेत मनुज अवतार॥ ९७॥
जब लौं सुमिरे न हरी, जो संतनके मीत।
बहु दिन गिनतीमें नहीं, गए बृथा सब बीत॥ ९८॥
करौ त्याग नाना कपट, मन हरिपद अनुराग।
सोवत बीते काल बहु, महामोह निशि जाग॥ ९९॥
पानी बाढ़ौ नावमें, घरमें बाढ़ौ दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥ १००॥
का मुख लै हँसि बोलिये, तुलसी दीजै रोय।
जन्म अमोलक आपनौ, चले अकारथ खोय॥ १०१॥
हाथी घोड़े धन घना, चंदमुखी बहु नार।
नाम बिना यमलोकमें, पावत दुःख अपार॥ १०२॥
मोह महा दुख रूप है, ताको मार निकार।
प्रीति जगतकी छोड़ दे, तब होवै निस्तार॥ १०३॥
ज्यों तीया पीहर बसै, सुरत रहै पिय माहिं।
ऐसे जन जगमें रहैं, प्रभुको भूलैं नाहिं॥ १०४॥
भक्तनकी महिमा अमित, पार न पावै कोय।
जहाँ भक्तजन पग धरैं, असदृश तीरथ सोय॥ १०५॥
भक्त संग छाड़ौं नहीं, सदा रहौं तिन पास।
जहाँ न आदर भक्तकौ, तहाँ न मेरौ बास॥ १०६॥
हरिसम जग कछु वस्तु नहिं, प्रेम पंथ सम पंथ।
सदगुरु सम सज्जन नहीं, गीता सम नहिं ग्रंथ॥ १०७॥
जाही पैंडे मूत है, वाही पैंडे पूत।
राम भजै तो पूत है, नहीं मूतका मूत॥ १०८॥
सकल वस्तु संसारकी, कबहूँ स्थिर है नाहिं।
तिहि कारण ज्ञानी पुरुष, चित न धरत तिहि माहिं॥ १०९॥
प्रभुताको सब मरत हैं, प्रभुको मरै न कोय।
जो कोई प्रभुको मरै, तो प्रभुता चेरी होय॥ ११०॥

चलती चाकी देखिके, दिया कबीरा रोय।
दो पाटनके बीचमें, साबित रहा न कोय॥ १११॥
जाके मन बिश्वास हैं, सदा प्रभू हैं संग।
कोटि काल झकझोरई, तऊ न हो चित भंग॥ ११२॥
जाको राखै साँइयाँ, मारि सकै नहिं कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग वैरी होय॥ ११३॥
तरुवर सरवर संतजन, चौथे बरसै मेह।
परमारथके कारनै, चारों धारे देह॥ ११४॥
साधु होय संग्रह करै, दूजे दिनको नीर।
तरै न तारै और को, यौं कथ कहै कबीर॥ ११५॥
कथा कीरतन कलि बिषे, भवसागरकी नाव।
कह कबीर जग तरनको, नाहीं ठौर उपाव॥ ११६॥
कथा कीरतन करनकी, जाके निसिदिन रीति।
कह कबीर वा दाससे, निश्चय कीजै प्रीति॥ ११७॥
कथा कीरतन रातदिन, जाके उद्यम येह।
कह कबीर ता साधुकी, हम चरननकी खेह॥ ११८॥
सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय।
रंचक घटमें संचरें, सब तन कंचन होय॥ ११९॥
जबहिं नाम हिरदै धर्‍यौ, भयो पापको नास।
मानो चिनगी आगकी, परी पुरानी घास॥ १२०॥
रूखा सूखा खाय कर, ठंडा पानी पीय।
देख पराई चोपड़ी, क्यों ललचावे जीय॥ १२१॥
मैं अपराधी जन्मका, नख सिख भरा विकार।
तुव दाता दुख भंजना, मेरी करो सम्हार॥ १२२॥
क्या मुख ले विनती करूँ, लाज न आवत मोहि।
तुव देखत अवगुण करूँ, कैसे भाऊँ तोहि॥ १२३॥
जो अबके स्वामी मिलैं, सब सुख आँखूँ रोय।
चरणों ऊपर शीश धर, कहूँ जो कहना होय॥ १२४॥

दोष पराया देखकर, चले हसंत हसंत।
अपना याद न आवई, जाका आदि न अंत॥ १२५॥
निंदकसे कुत्ता भला, जो हठ कर माँडे रार।
कुत्तासे क्रोधी बुरा, गुरुहि दिखावे गार॥ १२६॥
साँचे शाप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचेको साँचा मिलै, साँचे माहिं समाय॥ १२७॥
आवत गाली एक है, उलटत होय अनेक।
कहैं कबीर न उलटिये, वाहि एककी एक॥ १२८॥
गाली सो सब ऊपजैं, कलह कष्ट औ मीच।
हार चलै सो संत हैं, लाग मरै सो नीच॥ १२९॥
ऐसी वाणी बोलिये, मनका आपा खोय।
औरनको शीतल करै, आपा शीतल होय॥ १३०॥
बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोल।
हिये तराजू तौलकर, तब मुख बाहर खोल॥ १३१॥
कुटिल बचन सबसे बुरा, जार करै तन छार।
साधु बचन जलरूप है, बरसै अमृत धार॥ १३२॥
खोद खाद धरती सहै, कूट काट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहै, और से सहा न जाय॥ १३३॥
वाद विवादे बिष घना, बोले बहुत उपाध।
मौन गहै, सबकी सहै, सुमरै नाम अगाध॥ १३४॥
जहाँ दया तहिं धर्म है, जहाँ लोभ तहिं पाप।
जहाँ क्रोध तहिं काल है, जहाँ क्षमा तहिं आप॥ १३५॥
आसन मारे क्या हुआ, मरी न मनकी आस।
तेली केरा बैल ज्यों, घर ही कोस पचास॥ १३६॥
चलौ चलौ सब कोइ कहै, पहुँचे बिरला कोय।
एक कनक एक कामिनी, दुर्गम घाटी दोय॥ १३७॥
परनारी के राचने, सीधा नरके जाय।
तिनका यम छाँड़ै नहीं, कोटिन करै उपाय॥ १३८॥

जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलैं, रवि रजनी इक ठाम॥ १३९॥
एक कनक औ कामिनी, विष भल किये उपाय।
देखत ही ते विष चढ़े, चाखत ही मर जाय॥ १४०॥
कंचन तजना सहज है, सहज त्रियाका नेह।
मान बड़ाई ईरषा, दुर्लभ तजनी येह॥ १४१॥
लेनेको हरिनाम है, देनेको अनदान।
तरनेको आधीनता, डूबने को अभिमान॥ १४२॥
मरेंगे मर जायँगे, कोई न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसायँगे, छोड़ बसंता गाम॥ १४३॥
जन्म मरन दुख याद कर, कोरे काम निवार।
जिन पंथा तोहिं चालना, सोई पंथ सँवार॥ १४४॥
आज कालके बीचमें, जंगल होगा बास।
ऊपर ऊपर हल फिरैं, ढोर चरैंगे घास॥ १४५॥
मन दीया कहिं और ही, तन साधोके संग।
कह कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग॥ १४६॥
दुखमें सुमरन सब करै, सुखमें करै न कोय।
जो सुखमें सुमरन करै, तो दुख काहे को होय॥ १४७॥
सुमरनकी सुधि यों करो, ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरतमें, कहै कबीर बिचार॥ १४८॥
मन फुरनासे रहित कर, जौनहि बिधिसे होय।
चहै भक्ति चहै ध्यान कर, चहै ज्ञानसे खोय॥ १४९॥
मनके हारे हार है, मनके जीते जीत।
परब्रह्मको पाइये, मन ही की परतीत॥ १५०॥
अनमाँगा तो अति भला, माँग लिया नहिं दोष।
उदर समाना माँग ले, निश्चय पावै मोष॥ १५१॥
कबीर मन तो एक है, भावे तहाँ लगाय।
भावै हरिकी भक्ति कर, भावैं विषय कमाय॥ १५२॥

मनके मारे बन गए, बन तज बस्ती माहिं।
कह कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाहिं॥ १५३॥
कबीर यह मन लालची, समझे नहीं गँवार।
भजन करनको आलसी, खानेमें हुशियार॥ १५४॥
हाड़ जलैं ज्यों लाकड़ी, केश जलैं ज्यों घास।
सब जग जलता देखकर, भये कबीर उदास॥ १५५॥
रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥ १५६॥
आज कहैं मैं कल भजूँ, काल कहै फिर काल।
आज कालके करत ही, औसर जासी चाल॥ १५७॥
कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखौ आय॥ १५८॥
जीवत माटी हो रहौ, साईं सनमुख होय।
दादू पहिले मर रहौ, पाछे मरै सब कोय॥ १५९॥
कहा करै बैरी प्रबल, जो सहाय बलबीर।
दस हजार गजबल घट्यो, घट्यो न दस गज चीर॥ १६०॥
जो गृह करै तो धर्म कर, नहीं तो कर वैराग।
बैरागी बंधन करै, ताको बड़ो अभाग॥ १६१॥
गो धन गज धन बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूल समान॥ १६२॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी ते पुनि आध।
भीखा संगति साधुकी, कटें कोटि अपराध॥ १६३॥
करत करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, शिल पर होत निशान॥ १६४॥
जननी जनै तो भक्तजन, कै दाता कै शूर।
नाहीं तौ तू बाँझ रह, काहि गँवावै नूर॥ १६५॥
अजगर करैं न चाकरी, पंछी करैं न काम।
दास मलूका यों कहैं, सब के दाता राम॥ १६६॥

भोजन छादन की नहीं, सोच करै हरिदास।
विश्व भरण प्रभु करत हैं, ते क्यों रहैं निरास॥ १६७॥
पुनि श्रीमुख गीता विषै, भाष्यो अर्जुन पास।
योग क्षेम सब हौं करो, जिनके मेरी आस॥ १६८॥
गिरह गाँठ नहिं बाँधते, जब देवै तब खाहिं।
प्रभु तिनके पाछे फिरैं, मत भूखे रहि जाहिं॥ १६९॥
माया सगी न मन सगा, सगा न यह संसार।
परशुराम या जीवको, सगा सो सिरजनहार॥ १७०॥
जब लग घटमें प्राण है, तब लग प्रभु न विसार।
नारायणको ध्यान धर, पल पल नाम चितार॥ १७१॥
जिन खोजा तिन पाइया, पारब्रह्म घट माहिं।
यह जग बौरा हो रह्या, इत उत ढूँढन जाहिं॥ १७२॥
रामनाम अवलंब बिनु, परमारथ की आस।
बरषत बादरि बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास॥ १७३॥
तुलसी हठि हठि कहत नित, चित सुनि हित करि मानि।
लाभ राम सुमिरन बड़ो, बड़ी विसारें हानि॥ १७४॥
बिगरी जनम अनेककी, सुधरै अबहीं आजु।
होहि रामकौ, नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु॥ १७५॥
राम भरोसौ राम बल, राम नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, माँगत तुलसीदास॥ १७६॥
राम नाम रति राम गति, राम नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, चहुँ दिसि तुलसीदास॥ १७७॥
रे मन सबसों निरस ह्वै, सरस राम सों होहिं।
भलौ सिखावन देत है, निसि दिन तुलसी तोहिं॥ १७८॥
स्वारथ सीता राम सों, परमारथ सिय राम।
तुलसी तेरौ दूसरे, द्वार कहा कहु काम॥ १७९॥
राम प्रेम बिनु दूबरौ, राम प्रेमहीं पीन।
रघुबर कबहुँक करहुँगे, तुलसिहिं ज्यों जल मीन॥ १८०॥

निगम अगम साहेब सुगम, राम साँचिली चाह।
अंबु असन अवलोकिअत, सुलभ सबै जग माँह॥ १८१॥
सब साधन को एक फल, जेहिं जान्यो सो जान।
ज्यों त्यों मन मंदिर बसहि, राम धरें धनु बान॥ १८२॥
तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।
राग न रोष न दोश दुख, दास भये भव पार॥ १८३॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सेब।
कह कबीर वह क्यों मिलै, निःकामी निज देव॥ १८४॥
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानियै, जो आर पार ह्वै जाय॥ १८५॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय॥ १८६॥
छिनहि चढ़ै, छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥ १८७॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय॥ १८८॥
दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीवकी स्वास से, लोह भस्म हो जाय॥ १८९॥
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप॥ १९०॥
निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय॥ १९१॥
लतन तरै ठाढ़ौ कबहुँ, कबहूँ यमुना तीर।
नारायन नैनन बसी, मूरति श्याम शरीर॥ १९२॥
जाके मन यह छबि बसी, सोवत हू बररात।
नारायण कुण्डल निकट, अदभुत अकल सुहात॥ १९३॥
जो घायल हरि दृगन के, परे प्रेम के खेत।
नारायन सुनि श्याम गुण, एक संग दो देत॥ १९४॥

नारायण जाके हियो, बिंध्यो श्याम दृग बान।
जग के भावैं जीवतो, है वह मृतक समान॥ १९५॥
सुख संपति धन धामकी, ताहि न मनमें आस।
नारायण जाके हिये, निशि दिन प्रेम प्रकाश॥ १९६॥
नारायण मनमें बसी, लोक लाज कुलकान।
आशिक होनौ श्यामको, हाँसी खेल न जान॥ १९७॥
सो क्यों सेवै बाग बन, गुल्म लता तरु मूल।
नारायण जाके हृदय, फूल रह्यो वह फूल॥ १९८॥
नारायण या डगरमें, कोउ चलत है बीर।
पग पगमें बरछी लगै, श्वास श्वासमें तीर॥ १९९॥
लगन लगी गोपाल की, भूली तन की सार।
नारायण मछली भयौ, श्यामरूप जलधार॥ २००॥
नारायण या प्रेमकौ, नद उमड़त जा ठौर।
पलमें लाज म्रजादके, तट काटत है दौर॥ २०१॥
दुर्लभ मानुष जनम है, देह न बारंबार।
तरुवर ज्यों पत्ता झड़ै, बहुरि न लागै डार॥ २०२॥
माँगत मरन समान है, मति कोइ माँगौ भीख।
माँगनसे मरना भला, यह सतगुरुकी सीख॥ २०३॥
लूटि सके तो लूटि लै, राम नामकी लूटि।
पाछे फिरि पछताहुगे, प्राण जाहिं जब छूटि॥ २०४॥
समदृष्टी तब जानिये, सीतल समता होय।
सब जीवन की आत्मा, लसै एकसी सोय॥ २०५॥
साधू भूखा भावका, धन का भूखा नाहिं।
धनका भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं॥ २०६॥
कबिरा संगत साधकी, हरै और की ब्याधि।
संगत बुरी असाधकी, आठौ पहर उपाधि॥ २०७॥
कबिरा संगत साधुकी, जौकी भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय॥ २०८॥

आछे दिन पाछे गये, हरिसे किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़िया चुग गइ खेत॥ २०९॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पलमें परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब॥ २१०॥
पाव पलककी सुध नहीं, करै काल्हका साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतरको बाज॥ २११॥
सुमिरन सों मन लाइये, जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्राण तजै तेहि संग॥ २१२॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी तेरे नामपर, जित देखूँ तित तूँ॥ २१३॥
साधू गाँठ न बाँधई, उदर समाना लेय।
आगे पीछे हरि खड़े, जब माँगैं तब देय॥ २१४॥
गुण मंदिर सुन्दर जुगल, मंगल मोद निधान।
नारायण निज चरन रति, यह दीजै वरदान॥ २१५॥
नारायण सुखभोगमें, तू लंपट दिन रैन।
अंत समय आयौ निकट, देख खोल के नैन॥ २१६॥
नारायण जिनके हृदय, प्रीति लगी घनश्याम।
जाति पाँति कुल सों गये, रहे न काहू काम॥ २१७॥
पराभक्ति अरु ज्ञानमें, नेक नहीं कछु भेद।
नारायण सुख प्रेम है, कहैं संत अरु बेद॥ २१८॥
पराभक्ति याको कहौं, जित तित श्याम दिखात।
नारायण सो ज्ञान है, पूरण ब्रह्म लखात॥ २१९॥
कोऊ नहिं अपनो सगो, बिन राधागोपाल।
नारायण तू बृथा मति, परै जगत के जाल॥ २२०॥
नारायण निज हियेमें, अपने दोष विचार।
ता पीछे तू औरके, औगुण भले निहार॥ २२१॥
नारायण मैं सत्य कहुँ, भुज उठाय कै आज।
जो जिय बनै गरीब तू, मिलै गरीब निवाज॥ २२२॥

भीतर सो मैलो हियौ, बाहर रूप अनेक।
नारायण तासों भलौ, कौआ तन मन एक॥ २२३॥
छबि निहारि गोपालकी, जेहि न होय आनन्द।
नारायण तेहिं जानिये, यही चौथको चंद॥ २२४॥
रे मन क्यों भटकत फिरत, भज श्रीनंदकुमार।
नारायण अबहूँ समझ, भये न कछू बिगार॥ २२५॥
नारायण तू भजन कर, कहा करैंगे कूर।
अस्तुत निंदा जगतकी, दोउनके सिर धूर॥ २२६॥
चार दिननकी चाँदनी, यह संपति संसार।
नारायण हरि भजन कर, जासों होय उबार॥ २२७॥
उर भीतर अति चाहना, बाहर राखत त्याग।
नारायण वा त्याग पै, परौ भारकी आग॥ २२८॥
मान बड़ाई ईरषा, मनमें भरी अनेक।
नारायण साधू बने, देखौ अचरज एक॥ २२९॥
सुमरन सुरत लगाय कर, मुख ते कछू न बोल।
बाहरके पट देय कर, अंतरके पट खोल॥ २३०॥
माला तो करमें फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो दह दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥ २३१॥
कहता हूँ कह जात हूँ, कहा बजाऊँ ढोल।
श्वासा खाली जात है, तीन लोकका मोल॥ २३२॥
ऐसे महँगे मोलका, एक श्वास जो जाय।
चौदह लोक पटतर नहीं, काहे धूरि मिलाय॥ २३३॥
नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ पड़ै जो चाम।
कंचन देही काम किस, जो मुख नाहीं नाम॥ २३४॥
द्वार धनीके पड़ रहै, धका धनीका खाय।
कबहुँक धनी निबाजई, जो दर छोड़ न जाय॥ २३५॥
मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर॥ २३६॥

जैसी लौ पहिले लगी, तैसे निबहै ओर।
अपनी देहकी को गनै, तारै पुरुष करोर॥ २३७॥
सिंहोंके लहिड़े नहीं, हंसोंकी नहिं पात।
लालोंकी नहिं बोरियाँ, साधु न चलै जमात॥ २३८॥
नारि पराई आपनी, भोगें नरकै जाय।
आग आग सब एक सी, हाथ दियें जल जाय॥ २३९॥
नारि नसावै तीन गुण, जो नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यानमें, बैठ न सक्के कोय॥ २४०॥
नारी नदी अथाह जल, बूड़ मुआ संसार।
ऐसा साधू कब मिलै, जा सँग उतरूँ पार॥ २४१॥
छोटी मोटी कामिनी, सबही विषकी बेल।
बैरी मारे दाँवसे, यह मारै हँस खेल॥ २४२॥
सुखके माथे सिल पड़ै, जो नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुःख की, जो पलपल नाम जपाय॥ २४३॥
सुमिरन की सुध यों करो, ज्यों सुरभी सुत माहिं।
कहै कबीर चारों चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं॥ २४४॥
सुमिरनकी सुध यों करो, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेय सम्हाल॥ २४५॥
सुमरन सों मन लाइये, जैसे कीड़ा भृंग।
कबिर बिसारै आपको, होय जाय तिहि रंग॥ २४६॥
(कबीर) लूटना है तो लूट ले, राम नामकी लूट।
फिर पाछे पछतायगा, (जब) प्राण जायँगे छूट॥ २४७॥
कबीर सो मुख धन्य है, जिहिं मुख निकसै राम।
देही किसकी बापुरी, पवित्र होहै ग्राम॥ २४८॥
सपनेहूँ बर्रायके, जिहि मुख निकसत राम।
ताके पगकी पगतरी, मेरे तनकौ चाम॥ २४९॥
निर्बल नहीं सताइये, जाकी मोटी हाय।
मुई खालकी फूँकसे, सार भसम होय जाय॥ २५०॥

हरिजन तू हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा तू हरिसे मिलै, जीता यमके द्वार॥ २५१॥
मृग मीन भृंग पतंग कुंजर, एक दोष विनास।
पाँच दोष असाध्य जामें, ताकि केतिक आस॥ २५२॥
सबही सुख वैरागमें, तेज तपस्या माहिं।
भक्तीसे प्रभु होत वश, मुक्ति ज्ञान बिन नाहिं॥ २५३॥
दर दिवार दर्पण भये, जित देखूँ तित तोहिं।
कँकरी पथरी ठीकरी, भई आरसी मोहिं॥ २५४॥
सुखको मूल विचार है, दुःख मूल अविचार।
यह भाष्यो संक्षेपसे, चार वेदकौ सार॥ २५५॥
मरता मरता जग मुआ, मरहु न जान्या कोय।
ऐसा मरना जो मरै, बहुरि न मरना होय॥ २५६॥
कबीर सूता क्या करहि, उठ किन जपहि मुरार।
इक दिन सोवन होयगो, लम्बे गोड़ पसार॥ २५७॥
कौड़ी कौड़ी जोड़के, जोड़े लाख करोड़।
चलती बेर न कछु मिल्या, लई लँगोटी तोड़॥ २५८॥
रोड़ा हो रह बाटका, तज मन का अभिमान।
ऐसा कोई दास हो, ताहि मिलैं भगवान॥ २५९॥
दुनियाँके धोके मुआ, चालत कुलकी कान।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धरहिं मसान॥ २६०॥
टाले टोले दिन गयो, ब्याज बढ़ंतो जाय।
ना हरि भज्यौ न खत फट्यौ, काल पहूँच्यौ आय॥ २६१॥
कबिरा हमरा को नहीं, हम किसके हू नाहि।
जिन एह रचन रचाइया, तिस ही माँहि समाहि॥ २६२॥
केशौ केशौ कूकिये, नहिं कूकिये असार।
रात दिवसके कूकते, कबहुँ कि सुनै पुकार॥ २६३॥
श्वासो श्वास सम्हाल तो, इक दिन मिलिहैं आय।
सुमरन रस्ता सहजका, सद्गुरु दिया बताय॥ २६४॥

खान पान सुख भोगमें, पशु भी परम सुजान।
कहा अधिकता मनुजकी, जो न लखै भगवान॥ २६५॥
प्रीति रीत दुख मूल है, मैं कीनो निरधार।
प्रीत भली भगवानकी, जाते हो भव पार॥ २६६॥
प्रातहि उठिकै नित्य नित, करिये प्रभुको ध्यान।
जाते जगमें होय सुख, अरु उपजै सतज्ञान॥ २६७॥
काहू ते कड़वौ बचन, कहौ न कबहूँ जान।
तुरत मनुजके हृदयको, छेदत है जिमि बान॥ २६८॥
जानि सर्वगत ईस को, करौ न कबहूँ पाप।
सबहि चराचर जगत्को, देखत है वह आप॥ २६९॥
सत्संगति निज कल्पतरु, सकल कामना देत।
अमृतरूपी बचन कह, तिहूँ पाप हर लेत॥ २७०॥
सतसंगति सुख पलक जो, मुक्ति न तासु समान।
ब्रह्मादिक इंद्रादि भू, निपट अल्प ये जान॥ २७१॥
जगत मोह पाशी अजर, कटै न आन उपाय।
जो नित सतसंगत करत, सहज मुक्त हो जाय॥ २७२॥
कामधेनु अरु कल्पतरु, जो सेवत फल होय।
सतसंगत छिन एकमें, प्राणी पावे सोय॥ २७३॥
सार एक हरि नाम है, जगत बिषय बिन सार।
जैसे मोती ओस कौ, मिटत न लागै बार॥ २७४॥
विघन विनासन शुभकरन, हरन ताप त्रय शूल।
चरित ललित नँदलाल के, सकल सुखन के मूल॥ २७५॥
योगी पावै योग सों, ज्ञानी लहै विचार।
नानक पावै भक्ति सों, जाको प्रेम अधार॥ २७६॥
बिरध भयो सूझै नहीं, काल पहूँच्यौ आन।
कह नानक नर बावरे, क्यों न भजै भगवान॥ २७७॥
पतित उधारन भय हरन, हरि अनाथके नाथ।
कह नानक तिहिं जानिये, सदा बसत रघुनाथ॥ २७८॥

भय नाशन दुर्मतिहरन, कलि महिं हरि कौ नाम।
निशि दिन जो नानक भजै, सफल होहिं तिहिं काम॥ २७९॥
जिह्वा गुरु गोविंद भज, कर्ण सुनौ हरि नाम।
कह नानक सुन रे मना, परहि न यमके धाम॥ २८०॥
जो सुखको चाहै सदा, शरण रामकी लेह।
कह नानक सुन रे मना, दुर्लभ मानुष देह॥ २८१॥
मन मायामें फँसि रह्यो, बिसर्यौ गोविंद नाम।
कह नानक हरिभक्ति बिन, जीवन कौने काम॥ २८२॥
जन्म जन्म भरमत फिर्यौ, मिट्यौ न यम कौ त्रास।
कह नानक हरि भज मना, निर्भय पावहि बास॥ २८३॥
संग सखा सब तज गये, कोउ न निवह्यौ साथ।
कह नानक यहि बिपतिमें, एक टेक रघुनाथ॥ २८४॥
दीन दुखी असहायका, करौ सदा उपकार।
जानौ वेद पुराणका, यही एक है सार॥ २८५॥
हे हरि हे जगदीश हे, नंदनंदन व्रजचंद।
कोउ दिन तौ निज दरस दै, हरौ दीन दुख द्वंद॥ २८६॥
कोटि कोटि बीते जनम, तुम वियोग विललात।
अब तो मुख दिखराय के, हरौ पीर मम तात॥ २८७॥
बेगि दयानिधि दीनकी, सुनि कै कातर टेर।
धाय दरस प्रभु दीजियो, अब जनि करिये देर॥ २८८॥
धूमधाममें दिन गया, सोचत हो गइ साँझ।
एक घरी हरि ना भजा, जननी जन भइ बाँझ॥ २८९॥
राजा राना राव रँक, बड़ा जो सुमरै राम।
कह कबीर बंदा बड़ा, जो सुमिरे निष्काम॥ २९०॥
चिंता तौ हरिनामकी, और न चितवै दास।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोइ कालकी फाँस॥ २९१॥
कबिरा हरिके नाममें, बात चलावै और।
तिस अपराधी जीवको, तीन लोक नहिं ठौर॥ २९२॥

रग रग बोलै रामजी, रोम रोम रंकार।
सहजे ही धुनि होत है, सो ही सुमिरन सार॥ २९३॥
देह धरेका फल यही, भज मन कृष्ण मुरार।
मनुज जनमकी मौज, यह मिलै न बारंबार॥ २९४॥
कृष्ण नाम गुन गुप्त धन, पावैं हरिजन संत।
करै नहीं जो कामना, दिन दिन होय अनंत॥ २९५॥
सकल रैन सोवत गई, उग्या चहै अब भान।
अब भी भज भगवानको, जो चाहै कल्यान॥ २९६॥
गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीताराम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥ २९७॥
बरषा रितु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग, सावन भादव मास॥ २९८॥
एकु छत्रु एकु मुकुटमनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥ २९९॥
रामनाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजियार॥ ३००॥
सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद, तिन्हहुँ किए मन मीन॥ ३०१॥
निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार॥ ३०२॥
सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुनगाथ॥ ३०३॥
ब्रह्म राम तें नामु बड़, बरदायक बरदानि।
रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि॥ ३०४॥
नामु राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें, तुलसी तुलसीदासु॥ ३०५॥
रामनाम नरकेसरी, कनककसिपु कलि काल।
जापकजन प्रहलाद जिमि, पालिहिं दलि सुरसाल॥ ३०६॥

सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जल जान जेहिं, सचिव सुमति कपि भालु॥ ३०७॥
हौंहु कहावत सबु कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास॥ ३०८॥
प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब सीलनिधान॥ ३०९॥
राम निकाई रावरी, है सब ही को नीक।
जौं यह साँची है सदा, तौ नीकौ तुलसीक॥ ३१०॥
करम बचन मन छाड़ि छलु, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लग सुख सपनेहुँ नहीं, किएँ कोटि उपचार॥ ३११॥
जसु तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हियँ तासु॥ ३१२॥
सबु करि मागहिं एक फल, राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु, सिय रघुनंदन दोउ॥ ३१३॥
स्वामि सखा पितु मातु गुर, जिन्हके सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥ ३१४॥
जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥ ३१५॥
स्वपच सबर खस जमन जड़, पावँर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम, होत भुवन बिख्यात॥ ३१६॥
मातु मते महुँ मानि मोहि, जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर॥ ३१७॥
पेम अमिअ मंदरु बिरहु, भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर॥ ३१८॥
कलि मल समन दमन मन, रामु सुजस सुख मूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर, राम रहहिं अनुकूल॥ ३१९॥
निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह॥ ३२०॥

कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि॥ ३२१॥
गुर पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान॥ ३२२॥
जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि॥ ३२३॥
पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ, जैसें निर्गुन ब्रह्म॥ ३२४॥
सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहिं॥ ३२५॥
काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि॥ ३२६॥
गुनागार संसार दुख, रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देह न गेह॥ ३२७॥
एकु मै मंद मोह बस, कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबंधु भगवान॥ ३२८॥
सो अनन्य जाकें असि, मति न टरइ हनुमंत।
मै सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत॥ ३२९॥
कबहुँ प्रबल वह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं॥ ३३०॥
कबहूँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग॥ ३३१॥
चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि॥ ३३२॥
भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ॥ ३३३॥
भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥ ३३४॥

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥ ३३५॥
रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ, देखि हरष कपिराइ॥ ३३६॥
नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहिं बाट॥ ३३७॥
सचिव बैद गुरु तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिहीं नास॥ ३३८॥
काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहि संत॥ ३३९॥
बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीस॥ ३४०॥
रामु सत्यसंकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि॥ ३४१॥
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिहउँ, इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥ ३४२॥
सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि॥ ३४३॥
उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अंगद हनू समेत॥ ३४४॥
श्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर॥ ३४५॥
तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम॥ ३४६॥
अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुख पुंज।
देखउँ नयन बिरंचि सिव, सेब्य जुगल पद कंज॥ ३४७॥
सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥ ३४८॥

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥ ३३५॥
रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ, देखि हरष कपिराइ॥ ३३६॥
नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहिं बाट॥ ३३७॥
सचिव बैद गुरु तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिहीं नास॥ ३३८॥
काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहि संत॥ ३३९॥
बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीस॥ ३४०॥
रामु सत्यसंकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि॥ ३४१॥
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिहउँ, इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥ ३४२॥
सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि॥ ३४३॥
उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अंगद हनू समेत॥ ३४४॥
श्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर॥ ३४५॥
तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम॥ ३४६॥
अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुख पुंज।
देखउँ नयन बिरंचि सिव, सेब्य जुगल पद कंज॥ ३४७॥
सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥ ३४८॥

रावन क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ, दीन्हेउ राजु अखंड॥ ३४९॥
जो संपति सिव रावनहि, दीन्हि दिए दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि, सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥ ३५०॥
श्रीरघुबीर प्रताप ते, सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥ ३५१॥
तापस बेष गात कृस, जपत निरंतर मोहिं।
देखौं बेगि सो जतनु करु, सखा निहोरउँ तोहिं॥ ३५२॥
बीतें अवधि जाउँ जौं, जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर॥ ३५३॥
करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह, मोहिं सुमिरेहु मन माहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु, जहाँ संत सब जाहिं॥ ३५४॥
उमा जोग जप दान तप, नाना मख ब्रत नेम।
रामकृपा नहिं करहिं तसि, जसि निष्केवल प्रेम॥ ३५५॥
यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनाथ नाम तजि, नाहिन आन अधार॥ ३५६॥
बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय सोक न रोग॥ ३५७॥
दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्यसमाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस, रामचंद्र के राज॥ ३५८॥
बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहि काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचंद्र के राज॥ ३५९॥
जासु कृपा कटाच्छ सुर, चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति, करति सुभावहि खोइ॥ ३६०॥
ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंदघन, कर नर चरित उदार॥ ३६१॥
संत संग अपबर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद, श्रुति पुरान सदग्रंथ॥ ३६२॥

ताते सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दंड॥ ३६३॥
निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज॥ ३६४॥
परद्रोही परदार रत, परधन पर अपबाद।
ते नर पावँर पापमय, देह धरें मनुजाद॥ ३६५॥
ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहहिं कलिजुग माहिं॥ ३६६॥
सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ॥ ३६७॥
जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ॥ ३६८॥
मम गुन ग्रामु नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानइ, परानंद संदोह॥ ३६९॥
उमा अवधबासी नर, नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन, रघुनायक जहँ भूप॥ ३७०॥
दयाकुँवर या जगत में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसौ बास सराय कौ, तैसौ यह जग होय॥ ३७१॥
जैसौ मोती ओसकौ, तैसौ यह संसार।
बिनस जाय छिन एक मैं, दया प्रभू उर धार॥ ३७२॥
भाई बंधु कुटुंब सब, भए इकट्ठे आय।
दिना पाँचको खेल है, दया काल ग्रसि जाय॥ ३७३॥
बहे जात हैं जीव सब, काल नदीके माहिं।
दया भजन-नौका बिना, उपजि उपजि मरि जाहिं॥ ३७४॥
जनम जनमके बीछुरे, हरि अब रह्यो न जाय।
क्यों मन कूँ दुख देत हौ, बिरह तपाय तपाय॥ ३७५॥
बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवैं केहि ओर।
छिन ऊठूँ छिन गिर परूँ, राम दुखी मन मोर॥ ३७६॥

सोवत जागत एक पल, नाहिं मैं बिसरूँ तोहि।
करुणा सागर दयानिधि, हरि लीजै सुधि मोहि॥ ३७७॥
दया प्रेम प्रगट्यौ तिन्हैं, तनकी तजि न सँभार।
हरि रसमें माते फिरै, गृह बन कौन बिचार॥ ३७८॥
प्रेम मगन जे साध जन, तिन गति कही न जात।
रोय-रोय गावत हँसत, दया अटपटी बात॥ ३७९॥
हरिरस माते जे रहैं, तिनको मतौ अगाध।
त्रिभुवनकी संपति दया, तृन सम जानत साध॥ ३८०॥
प्रेम मगन गदगद बचन, पुलकि रोम सब अंग।
पुलकि रह्यो मन कूपमें, दया न ह्वै चित भंग॥ ३८१॥
कहूँ धरत पग परत कहुँ, डगमगात सब देह।
दया मगन हरि रूपमें, दिन दिन अधिक सनेह॥ ३८२॥
चित चिंता हरि रूप बिन, मो मन कछु न सुहाय।
हरि हरषित हमकूँ दया, कब रे मिलैंगे आय॥ ३८३॥
भव जल नदी भयावनी, किस बिधि उतरूँ पार।
साहिब मेरी अरज है, सुनिये बारंबार॥ ३८४॥
निरपच्छीके पच्छ तुम, निराधारके धार।
मेरे तुमहीं नाथ इक, जीवन प्रान अधार॥ ३८५॥
हौं पामर, तुम हौ प्रभु, अधम उधारन ईस।
दयादास पर दया करौ, दया सिंधु जगदीश॥ ३८६॥
असंख जीव तरि तरि गए, ले ले तुम्हारौ नाम।
अबकी बेरी बापजी, पर्‌यो मुगधसे काम॥ ३८७॥
जो जाकी ताकै सरन, ताको ताहि सम्हार।
तुम सब जानत नाथ जू, कहा कहौं बिस्तार॥ ३८८॥
पूजा अरचन बंदगी, नहिं सुमिरन, नहिं ध्यान।
प्रभुजी अब राखे बनै, बृदवाने की कान॥ ३८९॥
दुख तजि सुखकी चाह नहिं, नहिं बैकुंठ बिवान।
चरणकमल चित चहत हौं, मोहि तुम्हारी आन॥ ३९०॥

तनमद धनमद राजमद, अंतकाल मिटि जाय।
जिसके मद तेरो प्रभु, तेहि जम काल डेराइ॥ ३९१॥
जो मेरे करमन लखौ, तौ नहिं होत उबार।
दयादास पर दया करि, दीजै चूक बिसार॥ ३९२॥
हौं अनाथ तोहि बिनय करि, भय सों करूँ पुकार।
दया दास तन हेर प्रभु, अबके पार उतार॥ ३९३॥
जैसे सूरजके उदय, सकल तिमिर नसि जाय।
मिहर तुम्हारी हे प्रभु, क्यों अज्ञान रहाय॥ ३९४॥
सीस नवै तो तुमहिं कूँ, तुमहिं सुं भाखूँ दीन।
जो झगरूँ तौ तुमहि सूँ, तुम चरनन आधीन॥ ३९५॥
चित चातक रटना लगी, स्वाति बूँदकी आस।
दया-सिंधु भगवानजू, पुजवौ अबकी आस॥ ३९६॥
कब कौ टेरत दीन भौ, सुनौ न नाथ पुकार।
की सरवन ऊँचौ सुनौ, की बृद दियौ बिसार॥ ३९७॥
जगत सनेही जीव है, रामसनेही साध।
तन मन धन तजि हरि भजै, जिनका मता अगाध॥ ३९८॥
साध संग संसारमें, दुर्लभ मनुष सरीर।
सतसंगति सूँ मिटत है, त्रिबिध तापकी पीर॥ ३९९॥
साध रूपहरि आप हैं, पावन परम पुरान।
मेटैं दुबिधा जीवकी, सबका करैं कल्यान॥ ४००॥
साधुसंग छिन एक कौ, पुन्न न बरन्यों जाय।
रति उपजै हरिनाम सूँ, सबही पाप बिलाय॥ ४०१॥
कोटि जग्य ब्रत नेम तृथ, साध संगमें होय।
बिषय ब्याधि सब मिटत हैं, सांतिरूप सुख जोय॥ ४०२॥
कलि केवल संसारमें, और न कोउ उपाय।
साध संग हरिनाम बिन, मनकी तपन न जाय॥ ४०३॥
साध संग जगमें बड़ो, जो करि जानै कोय।
आधौ छिन सतसंग कौ, कलमख डारै खोय॥ ४०४॥

पियकौ रूप अनूप लखि, कोटि भान उँजियार।
दया सकल दुख मिट गयौ, प्रगट भयौ सुखसार॥ ४०५॥
वही एक व्यापक सकल, ज्यों मनिका मैं डोर।
थिर चर कीट पतंग मैं, दया न दूजो और॥ ४०६॥
अजर अमर अविगत अमित, अनुभव अलख अभेव।
अबिनासी आनंदमय, अभय सो आनँददेव॥ ४०७॥

घाटपर श्रीगंगाजीकी महिमाके श्लोक

गंगेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम्।
कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद् गुरुकल्मषम्॥

(पद्म० सृष्टि० ६०।५)

गंगाजीके नामके स्मरणमात्रसे पातक, कीर्तनसे अतिपातक और दर्शनसे भारी-भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं।

स्नानात् पानाच्च जाह्नव्यां पितॄणां तर्पणात्तथा।
महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने॥

(६०।६)

गंगाजीमें स्नान, जलपान और पितरोंका तर्पण करनेसे महापातकोंकी राशिका प्रतिदिन क्षय होता रहता है।

अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा।
तथा गंगाजलस्पर्शात् पुंसां पापं दहेत् क्षणात्॥

(६०।७)

जैसे अग्निका संसर्ग होनेसे रूई और सूखे तिनके क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार गंगाजी अपने जलका स्पर्श होनेपर मनुष्योंके सारे पाप एक ही क्षणमें दग्ध कर देती हैं।

तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा।
पुरुदानैर्गतिर्या च गंगां संसेव्य तां लभेत्॥

(६०।२४)

तपस्या, बहुत-से यज्ञ, नाना प्रकारके व्रत तथा पुष्कल दान करनेसे जो गति प्राप्त होती है, गंगाजीका सेवन करनेसे मनुष्य उसी गतिको पा लेता है।

त्यजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्‌गणाः।
अन्ये च बान्धवाः सर्वे गंगा तान्न परित्यजेत्॥

(६०।२६)

पुत्र पिताको, पत्नी प्रियतमको, सम्बन्धी अपने सम्बन्धीको तथा अन्य सब भाई-बन्धु भी प्रिय बन्धुको छोड़ देते हैं; किंतु गंगाजी अपने जनोंका परित्याग नहीं करतीं।

विष्णुपादार्घसम्पूते गंगे त्रिपथगामिनि।
धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि॥

गंगे! तुम श्रीविष्णुका चरणोदक होनेके कारण परम पवित्र हो तथा तीनों लोकोंमें गमन करनेसे त्रिपथगामिनी कहलाती हो। तुम्हारा जल धर्ममय है, इसलिये तुम धर्मद्रवीके नामसे विख्यात हो। जाह्नवी! मेरे पाप हर लो।

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता।
त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥

(६०।६१)

भगवान् विष्णुके चरणोंसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम श्रीविष्णुद्वारा सम्मानित वैष्णवी हो। मुझे जन्मसे लेकर मृत्युतकके पापोंसे बचाओ।

श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते।
अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम्॥

(६०।६२)

धर्मसे परिपूर्ण महादेवी भागीरथी! तुम अपने शोभायमान रजःकणोंसे और अमृतमय जलसे मुझे श्रद्धासम्पन्न बनाती हुई पवित्र करो।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

(६०। ७८)

जो सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गंगा, गंगा' ऐसे कहता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

पाठयज्ञपरैः सर्वैर्मन्त्रहोमसुरार्चनैः।
सा गतिर्न भवेज्जन्तोर्गङ्गासंसेवया च या॥

(६०। ७८)

पाठ, यज्ञ, मन्त्र, होम और देवार्चन आदि समस्त शुभ कर्मोंसे भी जीवको वह गति नहीं मिलती, जो श्रीगङ्गाजीके सेवनसे प्राप्त होती है।

विशेषात्कलिकाले च गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम्।
कृच्छ्राच्च क्षीणसत्त्वानामनन्तः पुण्यसम्भवः॥

(६०। १२३)

विशेषतः इस कलिकालमें सत्त्वगुणसे रहित मनुष्योंको कष्टसे छुड़ाने—मोद प्रदान करनेवाली गङ्गाजी ही हैं। गङ्गाजीके सेवनसे अनन्त पुण्यका उदय होता है।

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति।
अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥

(पद्म० सृ० ३९। ८६)

गङ्गाजी नाम लेनेमात्रसे पापोंको धो देती हैं, दर्शन करनेपर कल्याण प्रदान करती हैं तथा स्नान करने और जल पीनेपर सप्त पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देती हैं।

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः॥

(३९। ८९)

ब्रह्माजीका कथन है कि गङ्गाके समान तीर्थ, श्रीविष्णुसे बढ़कर देवता तथा ब्राह्मणोंसे बढ़कर पूज्य कोई नहीं है।

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति तस्य देहिनः।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥

(४३।५२)

किसी भी जीवकी हड्डियाँ जितने वर्षोंतक गङ्गामें रहती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है।

तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनामुत्तमा नदी।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि॥

(४३।५३)

गङ्गा तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ, नदियोंमें उत्तम नदी तथा सम्पूर्ण महापातकियोंको भी मोक्ष देनेवाली हैं।

सर्वेषां चैव भूतानां पापोपहतचेतसाम्।
गतिरन्यत्र मर्त्यानां नास्ति गङ्गासमा गतिः॥

(४३।५५)

जिनका चित्त पापसे दूषित है, ऐसे समस्त प्राणियों और मनुष्योंकी गङ्गाके सिवा अन्यत्र गति नहीं है।

पवित्राणां पवित्रं या मङ्गलानां च मङ्गलम्।
महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा॥

(४३।५६)

भगवान् शङ्करके मस्तकसे होकर निकली हुई गङ्गा सब पापोंको हरनेवाली और शुभकारिणी हैं। वे पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाली और मङ्गलमय पदार्थोंके लिये भी मङ्गलकारिणी हैं।

गीताद्वार [गीताप्रेस, गोरखपुरका प्रवेश-द्वार] एवं लीला-चित्रमन्दिर

भारतीय संस्कृति एवं धर्मकी महत्ता निर्विवाद है। हमारी सनातन संस्कृतिके अनेक कलापूर्ण प्राचीन प्रतीक देशमें स्थान-स्थानपर हैं। भारतीय मन्दिरोंमें जो कला-सौन्दर्य है, वह विश्वके किसी भी कला-मर्मज्ञको मुग्ध कर देता है। कला-सौन्दर्यके साथ उनमें गूढ़ धार्मिक एवं आध्यात्मिक तत्त्व निहित हैं। यह स्वाभाविक है कि अपने किसी निर्माणमें हम देशकी इस गौरवमय प्राचीन कलासे प्रेरणा ग्रहण करें। इसीलिये गीताप्रेसका प्रवेश-द्वार बनानेमें देशके विख्यात प्राचीन मन्दिरोंसे प्रेरणा ली गयी है।

हिंदूधर्म एक व्यापक धर्म है तथा उसके अंदर बौद्ध, जैन, सिख आदि अनेक मतोंका अन्तर्भाव है। बौद्ध, जैन एवं सिख-मन्दिरोंकी कला प्राचीन हिंदू-कलाका ही एक अंग है। इसलिये प्रवेश-द्वारके निर्माणमें सनातनधर्मके मन्दिरोंके अतिरिक्त बौद्ध, जैन एवं सिखधर्मके मन्दिरोंकी कलासे भी प्रेरणा ली गयी है।

प्राचीन मन्दिरोंकी देशमें बहुलता है। उनमेंसे अत्यन्त कलापूर्ण एवं प्रख्यात मन्दिर भी बहुत अधिक हैं। यह सम्भव नहीं था कि उन सभी प्रख्यात मन्दिरोंकी कलाका एक-एक अंश भी हम प्रवेश-द्वारमें ले पाते। किसी भी भवन या द्वारके निर्माणका क्षेत्र सीमित होता है। ऐसे निर्माणमें केवल यह किया जा सकता है कि उसमें जो कुछ बनाया जाय, उसका प्रत्येक अंश किसी-न-किसी सांस्कृतिक मन्दिरके किसी अंशके आधारपर बने। गीताप्रेसके प्रवेश-द्वारके निर्माणमें भी यही पद्धति अपनायी गयी है। द्वारके प्रत्येक अंशका निर्माण किसी-न-किसी प्राचीन सांस्कृतिक कलापूर्ण मन्दिरके किसी अंशके आधारपर ही हो—इसका यथाशक्ति ध्यान रखा गया है। इस प्रयत्नके परिणामस्वरूप प्रवेश-द्वार प्राचीन मन्दिर-कलाकी विभिन्न शैलियोंका आंशिक रूपमें दिग्दर्शक बन गया है।

हिन्दू-मन्दिरोंका प्राण उनकी कलामें नहीं है। कला तो उनका शृंगार-मात्र है। मन्दिरोंका प्राण है—उनकी आध्यात्मिक भावना, जिसे

वहाँकी आराध्यमूर्ति विश्वको देती है। इसके अतिरिक्त नाना प्रतीकों (चिह्नों)-द्वारा हमारे मन्दिर समाजको अनेक उत्तम तथ्योंका बोध कराते हैं। गीताप्रेस प्रवेश-द्वारमें हिंदूधर्मकी मुख्य उपास्य मूर्तियाँ विद्यमान हैं, श्रुति एवं गीताके उद्‌बोधक वाक्य हैं और हिंदूधर्मके आध्यात्मिक-आधिदैविक ज्ञानके निदर्शक प्राय: सभी मुख्य प्रतीक विद्यमान हैं। अतएव प्रवेश-द्वारके निर्माणको समझनेके लिये तीन बातें आवश्यक हैं—(१) द्वारमें जो प्रतिमाएँ हैं, उनकी उपास्य-भावनाका ज्ञान। (२) द्वारमें निर्मित प्रतीकोंके तात्पर्यका बोध और (३) द्वारके विभिन्न अंश जिन-जिन मन्दिरोंके अंशोंके आधारपर बने हैं, उन मन्दिरोंका सामान्य परिचय। द्वारका सामान्य परिचय देकर तब इन तीनों विषयोंका क्रमश: वर्णन करना ही उचित होगा।

गीताद्वारका परिचय

गीताप्रेसका प्रवेश-द्वार भूमिसे शिखरतक १३ मीटर १० से०मी० ऊँचा है और इसकी चौड़ाई मुख्य द्वारके दोनों पार्श्वोंमें स्थित नव-निर्मित भागके अन्तिम छोरतक १२ मीटर है। द्वारका मुख्य भाग तीन तल्लोंका बना है, जिनमें पहले खण्डकी ऊँचाई देहरीसे ४ मीटर २.५ से०मी० है। दूसरे खण्डकी ऊँचाई ३ मीटर ५७.५ से०मी० है। दूसरा खण्ड नीचेसे लगभग प्रथम खण्डके समान ही चौड़ा है। तीसरा खण्ड जो अन्तिम खण्ड है उसकी ऊँचाई ५ मीटर ५० से०मी० है और उसकी चौड़ाई नीचेसे ५ मीटर २० से०मी० है।

इस प्रवेश-द्वारके सामने मुख करके खड़े होनेपर आप उत्तर मुख खड़े होंगे। ठीक सम्मुखसे द्वारको देखनेपर पूरा द्वार आपको तीन तल्लोंका स्पष्ट दीख पड़ता है। प्रथम खण्ड तो भूमिपर है, उसके दोनों ओरसे दोनों खंभे ध्यान देने योग्य हैं। ये खंभे दक्षिणभारतके सुप्रसिद्ध गुफा मन्दिर इलोराके खंभोंकी अनुकृतिपर बने हैं। इसी खण्डके ऊपर प्रेसका नाम तथा स्थापना काल हिंदी एवं अंग्रेजीमें दिया गया है।

प्रथम खण्डके ऊपर द्वारका दूसरा खण्ड है, जिसे द्वारका मुख्य खण्ड कहना चाहिये, क्योंकि इसी खण्डमें संगमरमरका बना वह चार घोड़ोंका

रथ है, जिसपर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिमा इस मुद्रामें बनी है, मानो वे पार्थ-सारथि इस समय भी पीछे रथपर स्थित अपने प्रिय सखा गाण्डीवधारी अर्जुनको कौरव-सेनाको दिखा रहे हों। यह रथ अपनी पूरी लंबाईमें १ मीटर, ८२.५ से०मी० है। इसकी चौड़ाई ६७.५ से०मी० और ऊँचाई ४२.५ से०मी० है। रथमें रथीके रूपमें खड़े अर्जुनकी मूर्ति ८२.५ से०मी० ऊँची है। रथके अश्वोंकी रश्मि पकड़े भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिमा लगभग ६७ से०मी० ऊँची है। यह पूरा रथ लगभग १४ कुन्तल ४० कि०ग्रा० का है। यह मूर्ति जयपुरसे बनवाकर मँगायी गयी है और सुरक्षाकी दृष्टिसे प्लास्टिकके पारदर्शी उज्ज्वल आवरणमें इसे सुरक्षित रखा गया है।

वह मण्डलाकार अवकाश, जिसके सम्मुख रथ स्थापित है, प्रसिद्ध गुहा-मन्दिर अजंताके मुखभागके आधारपर बनाया गया है। इस मण्डलके दोनों ओर आपको शिखरोंसे युक्त तीन-तीन खिड़कियोंवाले छोटे-छोटे मन्दिर-से बने दीख पड़ते हैं। इन्हें बंगालके सुप्रसिद्ध दक्षिणेश्वरके काली-मन्दिरकी अनुकृतिपर बनानेकी चेष्टा की गयी है।

उक्त छोटे-छोटे मन्दिरोंके दोनों ओर जो मन्दिरके ढंगकी छतरियाँ हैं, उनमें कई मन्दिरोंकी कलाओंका संकलन करनेका प्रयास किया गया है। उनके शिखरपर लगा त्रिशूल और ऊपरी शिखर काशीके शिव-मन्दिरोंका स्मरण कराता है। शिखरके ऊपरी अंशके नीचेका भाग ऐसा है, जैसे दो खिले कमल हों, जिनमें ऊपरवाले कमलका मुख ऊपर और नीचेवाले कमलका मुख नीचे हो और उनके संयोगसे एक डमरूकी आकृति बन गयी है। इस अंशको देखनेसे लगता है कि शिखरका ऊपरी भाग एक कमलपर रखा है और उसके नीचे दूसरा कमल पूरे मन्दिरपर अपनी मधुधारा उड़ेलता अधोमुख स्थित है। इस कमलाकार अंशके सहित उससे नीचेका पूरा भाग ब्रह्मा (वर्मा)-के किसी भी पैगोडा (बौद्ध-उपासना-गृह)-का स्मरण दिलाता है इन छतरियोंके ऊपर चारों कोनोंपर वृषभ-मूर्तियाँ बनी हैं और उनके बीच-बीचमें तीन-तीन फणोंकी नाग-मूर्तियाँ हैं। इन छतरियोंके नीचे जहाँ उपनिषदोंके दो वाक्य '**सत्यान्न प्रमदितव्यम्**' एवं '**धर्मान्न प्रमदितव्यम्**' अंकित हैं, उनके आधारभूत

दोनों नासिकाओं (ब्राकटों)-में तीन-तीन टोड़ियाँ लटक रही हैं, जो मथुराके प्रसिद्ध श्रीद्वारकाधीश-मन्दिरकी टोड़ियोंकी याद दिलाती हैं।

मध्यखण्डमें जो किनारोंपर दोनों ओर शिखरयुक्त मण्डप हैं, उनमें भी कई मन्दिरोंकी कला एकत्र करनेकी चेष्टा की गयी है। उनके ऊपरका चक्र केवल विष्णु-मन्दिरोंके ऊपरका चक्र नहीं है, वह पुरीके श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके 'नीलचक्र' का प्रतीक है। उसके नीचे जो कलशयुक्त तुंग शिखर है, वह भुवनेश्वरके प्रख्यात कलापूर्ण मन्दिर लिंगराजकी स्मृति दिलाता है।

द्वारका तीसरा खण्ड अन्तिम खण्ड है। इस खण्डमें नीचे जनकपुरधामके श्रीजानकी-मन्दिरकी छतरियोंके नमूनेकी-सी छतरी बनी है, जिसके दोनों ओर उपनिषद्के दो और पवित्र वाक्य **'सत्यं वद'** एवं **'धर्मं चर'** लिखे हुए हैं। छतरीके अतिरिक्त सीढ़ियोंके आकारका शिखर-भाग कोणार्कके सूर्य-मन्दिरकी शैलीका नमूना है।

उक्त शिखर-भागके ऊपर मध्यमें शीशेका बना शक्तिका चित्र है और चित्रके दोनों ओर भगवान्‌के आयुध बने हैं। बायीं ओर सबसे पहले श्रीरामके आयुध—धनुष एवं बाण-युक्त तूणीर; उनसे आगे भगवान् बालकृष्णके आयुध—मोरमुकुट, बाँसुरी एवं बजानेका सींग, दाहिनी ओर पहले भगवान् विष्णुके आयुध—चक्र, शंख, गदा एवं कमल तथा अन्तमें भगवान् शंकरके आयुध—त्रिशूल एवं डमरू बने हुए हैं। इसके ठीक ऊपरके शिखरवाले भागके मध्यमें भगवान् नारायणकी मूर्ति है। मूर्तिके नीचे उनका मन्त्र **'नमो नारायणाय'** खुदा हुआ है। शिखर-भाग दक्षिणभारतमें स्थित मदुराके मीनाक्षी-मन्दिरके शिखरका स्मरण दिलाता है। शिखरपर चारों ओर चार सिंह-मुख निर्मित हैं।

द्वारके वाम पार्श्व (पूर्व दिशा)-के मण्डपमें पुरीके श्रीजगन्नाथ-मन्दिरका नील चक्र है। मुख्य भागमें शिखरके नीचे सूर्यका चित्र है और उसके ऊपर भगवान् शंकरकी मूर्ति है, जिसके नीचे उनका मन्त्र—**'नमः शिवाय'** खुदा हुआ है। इस पार्श्वमें दो उपनिषद्-वाक्य अंकित हैं—**'मातृदेवो भव'**, **'पितृदेवो भव'**।

द्वारके दक्षिण पार्श्व (पश्चिम दिशा)-के दूसरे तल्लेमें एक

खिड़की है। यह अमृतसरके मनोहर सिख-मन्दिर 'स्वर्ण-मन्दिर' में जो खिड़कियाँ हैं, उनका अनुकरण है।

द्वारके मुख्य भागके पार्श्वमें जो मन्दिर-सरीखा मण्डप है, उसीके बराबर द्वारके मुख्य भागमें शिवमन्दिर-जैसा एक और मण्डप-सा बना है। ऐसा ही मण्डप द्वारकी पूर्व दिशामें भी है। इसकी आकृति भी बहुत कुछ हिंदू-संस्कृतिके प्राचीन प्रतीकोंके आधारपर ही बनायी गयी है। इसके एक ओर '**आचार्यदेवो भव**' और दूसरी ओर '**अतिथिदेवो भव**'—ये उपनिषद्-वाक्य लिखे हुए हैं।

द्वारके तीसरे खण्डमें शिखरके नीचे मण्डपमें चन्द्रमाका चित्र है। उस मण्डपको खजुराहोके कलापूर्ण मन्दिरोंके कुछ अंशोंसे साम्य देनेकी चेष्टा की गयी है। इस मण्डपके ऊपर मुख्य द्वारका शिखरभाग है, जिसके मध्यमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी मूर्ति है एवं नीचे उनका मन्त्र—'**रां रामाय नमः**' खुदा हुआ है।

अब आप द्वारके भीतर चले चलें। भीतर जाकर फिर द्वारकी ओर मुख करके खड़े होनेसे आप द्वारकी उत्तर दिशाको देख सकेंगे। द्वारकी उत्तर दिशामें दूसरे तल्लेके निम्नभागमें आपको एक घेरा (रेलिंग) दिखायी देगा, जो पूर्व एवं पश्चिम दिशाओंको भी घेरे हुए है और जो साँचीके प्रसिद्ध स्तूपके घेरेकी शैलीपर बना है। वहाँकी अपेक्षा इसमें इतनी बात और है कि बीच-बीचमें शंख-युक्त चक्र भी बना दिये गये हैं। इस घेरेके ऊपर एक कलापूर्ण लहरदार तोरण (मेहराब) है। यह आबूमें स्थित दिलवाड़ा-मन्दिरके भीतरी तोरणकी कलापूर्ण शैलीका आंशिक अनुकरण है। इसके ऊपर जो एक द्वार बना है, उसपर एक धनुषाकार तोरण है। तोरणपर तीन कँगूरे बने हैं। इस प्रकारका कँगूरेदार तोरण राजस्थानी छोटे मन्दिरोंके शिखरोंकी याद दिलाता है। इसी तोरणयुक्त द्वारके पार्श्वमें एक ओर '**न मे भक्तः प्रणश्यति**' और दूसरी ओर '**मामेकं शरणं व्रज**'—ये दो भगवद्गीताके वाक्य लिखे हुए हैं।

इसी दिशामें द्वारके तीसरे खण्डमें मध्यस्थानपर भगवान् श्रीकृष्णका चित्र है, जिसके दोनों पार्श्वोंमें भक्तिके प्रतीक—पूजाके उपकरण बने हुए हैं। बायीं ओर हाथमें जपमाला, पुष्पाञ्जलि-समर्पणकी आकृति, खुली हुई

पुस्तक तथा उसके आधाररूपमें कमलका पुष्प बना है। इनके पार्श्वमें दीपक-युक्त दीपधारा एवं धूप-पात्र दिखायी देते हैं। चित्रके दाहिनी ओर दाहिने हाथमें आरती, बायेंमें घंटी, नीचे फलपूर्ण नैवेद्यकी थाली एवं थालीका आधार हैं। इनके पार्श्वमें क्रमशः मृदंग तथा करतालों एवं मजीरोंकी जोड़ी बनी है। शिखरमें नीचे गणेशजीकी मूर्ति है और मूर्तिके नीचे उनका मन्त्र—'**गं गणपतये नमः**' अंकित है।

यहाँ यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि प्रवेश-द्वारमें उज्जैनके महाकालेश्वर, उत्तराखण्डके केदारनाथ तथा बुद्धगयाके प्राचीन मन्दिरोंकी कलाको भी स्थान देनेकी चेष्टा की गयी है।

द्वारमें स्थान-स्थानपर जो श्रुति तथा गीताके वाक्य लिखे गये हैं, उनकी महत्ता स्पष्ट ही है। इन वाक्योंके अतिरिक्त द्वारमें जो चक्र, त्रिशूल, कमल, शंख एवं स्वस्तिक आदिकी आकृतियाँ हैं, वे केवल सजावटके लिये नहीं हैं, अपितु उनका विशेष अर्थ है।

द्वारस्थ प्रतिमाओंकी उपास्य-भावना

श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित सनातन हिंदूधर्ममें जो उपासना-परम्परा है, उसे त्रिविध कह सकते हैं। मुख्य उपासना है—पंचदेवोपासना, किंतु पंचदेवोपासनामें जो नारायणकी उपासना है, उसमें अवतारोपासनाकी प्रचुरता शास्त्र एवं समाजमें भी प्रसिद्ध है। उपासना चाहे प्रतीकात्मक हो या यज्ञात्मक, दोनोंमें ही अंगोपासना रहती ही है। इस अंगोपासनाके रूपमें गणपति तथा गौरीका पूजन, नवग्रह-पूजन, मातृका-पूजन आदि किये जाते हैं। इस प्रकार उपासनाके तीन रूप हुए—(१) **पंचदेवोपासना**, (२) **अवतारोपासना** एवं (३) **अंगोपासना।**

पंचदेवोंमें हैं—(१) भगवान् नारायण, (२) भगवान् शिव, (३) भगवान् गणेश, (४) भगवान् सूर्य एवं (५) भगवती महाशक्ति। यह पंचदेवोपासना सनातनधर्मका प्राण है। ये परम तत्त्वके पाँचों रूप परस्पर अभिन्न हैं, सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। सनातनधर्ममें इन पाँच देवोंकी निष्ठाके भेदसे पाँच सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई है—(१) वैष्णव, (२) शैव, (३) गाणपत्य, (४) सौर एवं (५) शाक्त। इन पाँचों सम्प्रदायोंके आराध्य पंचदेवताओंकी प्रतिमाएँ प्रवेश-द्वारमें विराजमान हैं।

अवतारोपासनामें मुख्य रूपसे श्रीराम एवं श्रीकृष्णकी ही उपासना प्रचलित है। इसलिये प्रवेश-द्वारमें अवतारोपासनाके मुख्य आराध्य मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम और लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रकी ही प्रतिमाएँ स्थापित की गयी हैं।

अंगोपासनामें गणपति, गौरी, नवग्रह, मातृका एवं योगिनियों आदिकी पूजा होती है। यह सम्भव नहीं था कि कि द्वार-निर्माणमें पंचदेवोंके समस्त पार्षद-परिकरोंकी प्रतिमाओंको भी स्थान दिया जाता। इसलिये आराधना-परम्पराकी मुख्य प्रतिमाओंका समावेश करके ही संतोष करना पड़ा। अंगोपासनाके मुख्य अंगोंमें गणेश और गौरीकी प्रतिमाओंको तो पंचदेवोंके अन्तर्गत स्थान दे ही दिया गया है। मातृकाएँ एवं योगिनियाँ महाशक्तिकी ही अंशभूता एवं उनकी पार्षद-स्वरूपा हैं। अतः उनकी प्रतिमाएँ नहीं दी गयी हैं। नवग्रहोंमें सूर्य और चन्द्रमा—ये ही दो मुख्य ग्रह हैं। इनकी प्रतिमाओंको स्थान देकर नवग्रहोपासनाकी सूचना दी गयी है।

इस प्रकार प्रवेश-द्वारमें सनातनधर्मके उपासना-तत्त्वका दिग्दर्शन करानेकी चेष्टा की गयी है। इस दृष्टिसे प्रवेश-द्वार उपासना-मन्दिर-सा बन गया है।

द्वारस्थित प्रतीक और उनके तात्पर्य

प्रवेश-द्वारमें सात प्रकारके प्रतीकोंका समावेश हुआ है—(१) शब्द-प्रतीक (२) जन्तु-प्रतीक (३) पुष्प-प्रतीक (४) चिह्न-प्रतीक (५) वस्तु-प्रतीक (६) आयुध-प्रतीक एवं (७) उपकरण-प्रतीक।

१—शब्द-प्रतीक हैं—उपनिषदों तथा गीताके वाक्य। उपनिषद्-वाक्य हैं—दक्षिणमें (सामने)—'**सत्यान्न प्रमदितव्यम्**।' सत्यसे च्युत नहीं होना चाहिये। '**धर्मान्न प्रमदितव्यम्**।' धर्मसे च्युत नहीं होना चाहिये। '**सत्यं वद**।' सत्य बोलो। '**धर्मं चर**।' धर्मका आचरण करो।

पूर्व (वाम पार्श्व)-में—'**मातृदेवो भव**।' माताको देवता (ईश्वरकी प्रतिमूर्ति) मानो। '**पितृदेवो भव**।' पिताको देवता (ईश्वरकी प्रतिमूर्ति) मानो।

पश्चिम (दक्षिण पार्श्व)-में—'**आचार्यदेवो भव**।' आचार्यको देवता (ईश्वरकी प्रतिमूर्ति) मानो '**अतिथिदेवो भव**।' अतिथिको देवता (ईश्वरकी प्रतिमूर्ति) मानो।

उत्तर (पृष्ठभाग) में—'**न मे भक्तः प्रणश्यति।**' मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता। '**मामेकं शरणं व्रज।**' एकमात्र मेरी शरणमें आ जा।

इस प्रकार उपर्युक्त श्रुति-वाक्योंद्वारा-जीवनमें सत्य एवं धर्मसे कभी स्खलन न हो, उनका दृढ़तासे पालन हो, माता, पिता, अतिथि और आचार्यका समुचित सत्कार हो—ये व्यावहारिक आदर्श बताये गये हैं तथा गीताकी सूक्तियोंद्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि भगवान्‌की भक्ति ही इस नश्वर जगत्‌में कालके कराल पंजोंसे त्राण देनेका आश्वासन दे सकती है। अतः वे परम दयामय ही एकमात्र शरण ग्रहण करनेयोग्य हैं।

२—द्वारमें तीन जन्तु प्रतीक हैं—वृषभ, सिंह एवं नाग। वृषभ—नन्दी भगवान् शिवका वाहन है और धर्मका आधिदैविक रूप है। धर्माचरण ही परम कल्याणस्वरूप शिवकी प्राप्तिका साधन है, यह वृषभ सूचित करता है।

सिंह शक्तिका वाहन है और शक्तिका ही प्रतीक है। धर्महीन शक्ति विनाशिका हो उठती है और शक्तिके बिना धर्म अरक्षित होकर असहाय बन जाता है। इसी तथ्यको व्यक्त करनेके लिये इस प्रवेश-द्वारमें सिंह और वृषभका संयोग हुआ है। शक्ति चतुर्मुखी—सर्वतोव्यापिनी होनी चाहिये, इस बातको इंगित करनेके लिये चारों दिशाओंमें एक-एक सिंह-मुख बनाया गया है। नाग आधार-शक्ति—भगवान् अनन्तदेवकी शक्तिका द्योतक है। शक्तिकी अनन्यताका बोध करानेके लिये द्वारमें नाग-मूर्तियोंका समावेश किया गया है।

३—हिंदूधर्मका—भारतीय सांस्कृतिक परम्पराका प्रतीकभूत पुष्प है कमल। कमल ही भारतका धार्मिक एवं राष्ट्रिय पुष्प है। अखिल ब्रह्माण्डकी—यहाँतक कि विश्व-स्रष्टा ब्रह्माजीकी भी उत्पत्ति भगवान् विष्णुके नाभि-कमलसे होनेके कारण अकेले भारतकी ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्वकी संस्कृतिका आधार कमल ही है। इतना ही नहीं, यह भगवान्‌की सम्पूर्ण भगवत्ता (समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्य)-से युक्त उनके स्वरूपभूत विशुद्ध सत्त्वका भी प्रतीक है—'**धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्मम्**'। हिंदूधर्मने कमलको बहुत महत्त्व दिया है; क्योंकि कमल ही हिंदूधर्मके सम्पूर्ण तात्पर्यको सूचित कर

पाता है। मन्दिरोंके शिखरबंद कमलके आकारके बनाये जाते हैं। आराध्यपीठ भी कमलाकार माना जाता है। साज-सज्जामें भी कमलाकृतिकी प्रधानता रहती है। इस प्रवेश-द्वारमें कमलकी आकृतिको स्थान देकर कमलका महत्त्व प्रकट किया गया है।

सौन्दर्य, मृदुलता, सौरभ एवं माधुरीसे समन्वित कमल जलमें रहता है और फिर भी जल उसे गीला नहीं कर पाता। कमलके पत्रपर जलकी बूँद पड़ी तो भी अलिप्त, अलग पड़ी रह जाती है। मनुष्य-जीवनका जो उच्चतम आदर्श हिंदूधर्ममें माना जाता है, वह यही कमलका आदर्श है। संसारमें रहकर भी संसारके राग-द्वेष, माया-मोह आदिसे जीवन सर्वथा अलिप्त रहे, किंतु वह नीरस न हो जाय। उसमें संयमकी सुन्दरता, लोक-कल्याणकी भावनाका सौरभ, सौहार्दकी मृदुलता और भक्तिकी मधुर रस-धारा हो। इसका एकमात्र कमल ही निर्लिप्तताके साथ सुन्दर, मृदुल, सुरभित एवं सरस जीवनका परिचायक प्रतीक है।

४—सनातनधर्मका सर्वमान्य, सर्वश्रेष्ठ प्रतीक रेखाङ्कनरूपमें स्वस्तिक है। यह वैदिक प्रतीक सर्वतोमुख मंगलका सूचक है। प्रत्येक शुभ कार्यमें शुभसूचक-रूपमें इसे सादर स्थान दिया जाता है। इसलिये प्रवेशद्वारमें यह परम पावन मंगल-प्रतीक दिया गया है।

५—कलश और शंख—ये दो वस्तुएँ प्रतीक द्वारमें बनाये गये हैं। इनमेंसे कलश तो पूर्णता, अमृत-तत्त्व एवं मंगलका सूचक है। पूर्णता तो केवल वर्तुलाकारसे भी सूचित की जा सकती है, किंतु कलश इस पूर्णताको सूचित करते हुए यह भी संकेत कर देता है कि पूर्णता जडात्मक नहीं है। इस जड प्रतीत होनेवाले ब्रह्माण्डमें एक रसरूप चिन्मय तत्त्व भरा हुआ है। श्रुति उसीको '**रसो वै सः**' कहती है। उस रहस्यमय आनन्दघनकी प्राप्तिमें ही जीवनकी सार्थकता है।

शङ्ख हिंदूधर्म एवं भारतीय संस्कृतिका उसी प्रकार प्रतीक-स्थानीय वाद्य है, जिस प्रकार हमारा सांस्कृतिक पुष्प है। शंखनाद प्रणवके मूल नादकी स्थूल अभिव्यक्ति है। इस प्रकार शंख ब्रह्ममय—वेदमय है, सम्पूर्ण वैदिक प्राणीका प्रतीक है। साथ ही वह अखिल विश्वको शीतलता एवं तृप्ति देनेवाले, अनुप्राणित एवं संघटित करनेवाले

जल-तत्त्वका भी प्रतीक है। प्रवेश-द्वारमें स्थान-स्थानपर इस ज्ञानसूचक, वृद्धिकारक एवं जीवनदायक शंखकी आकृति निर्मित है।

६—आयुध-प्रतीकोंमें शंख, चक्र, गदा एवं पद्म, त्रिशूल एवं डमरू, धनुष एवं बाण-युक्त तूणीर तथा मयूर-मुकुट, वंशी एवं शृंग—इनका इस प्रवेश-द्वारमें संनिवेश हुआ है। इनमें कमल एवं शंखका तात्पर्य तो ऊपर बताया जा चुका है। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्धमें इतनी बात और जान लेनी चाहिये कि ये दोनों ही भगवान् नारायणके आयुध भी हैं। चक्र भी भगवान्‌का आयुध है और तेजस्-तत्त्वका प्रतीक है। गदा भी इन्हींका आयुध है और शारीरिक, मानसिक एवं ऐन्द्रिय बलसे युक्त प्राण-तत्त्वका प्रतीक है। त्रिशूल भगवान् शंकरका आयुध तो है ही, वह साक्षात् विश्वस्वरूप भी माना जाता है। त्रिगुणमयी प्रकृति एक परम तत्त्वके आश्रित है, यह इसी बातका द्योतक है। डमरूको संगीतके सात स्वरोंका तथा शब्दशास्त्र (व्याकरण)-का मूल बताया गया है। धनुष भगवान्‌की संहार-शक्ति—कालका प्रतीक है। इन्द्रिय-वृत्तियोंके प्रतीक बाण हैं और कर्मराशिका सूचक तूणीर है। मयूर-पिच्छ कामशून्यताका बोधक है एवं मुकुट सर्वश्रेष्ठ पदकी ओर संकेत करता है। मुरली भगवान्‌की अघटितघटना-पटीयसी योगमायाका प्रतीक है। अनुभवी वैष्णव संतोंने उसे नादब्रह्मकी जननीके रूपमें भी व्यक्त किया है। शृंग भगवान् श्रीकृष्णका एक वाद्य विशेष है, जो मधुर उद्‌बोधककी सूचना देता है।

७—उपकरण-प्रतीकोंके रूपमें जपमाला, पुष्प, आधार-सहित पुस्तक, दीपयुक्त दीपाधार, धूपपात्र, आरती एवं घण्टा, फलपूर्ण नैवेद्यकी थाली, मृदंग तथा करतालों एवं मजीरोंकी जोड़ी—इन उपकरणों एवं उपचारोंका समावेश हुआ है। भक्तिके नौ अंग हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। इनमेंसे दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ये तो भावात्मक हैं। शेष छः भक्तिका क्रियात्मक रूप माने जाते हैं। पुष्प, दीपयुक्त दीपाधार, धूपपात्र, आरती एवं घण्टा तथा फलपूर्ण नैवेद्यकी थाली—ये पूजाके विविध उपचार एवं उपकरण हैं और इस प्रकार अर्चन-भक्तिके अंग हैं। इसी प्रकार मृदंग, करताल एवं मजीरोंकी जोड़ी कीर्तनभक्तिके अंग हैं। जपमाला स्मरण-भक्तिका द्योतक है एवं पुस्तक

श्रवण-भक्तिका प्रतीक है। विनम्रभावसे पुष्पांजलि देवविग्रहके चरणोंमें ही समर्पित है। अतएव वह पादसेवन एवं वन्दनभक्तिकी ओर संकेत करती है। इस प्रकार उक्त प्रतीकोंद्वारा भक्तिके छः क्रियात्मक रूप व्यक्त किये गये हैं।

गीताप्रेस-लीला-चित्रमन्दिर—एक परिकल्पना एवं निर्माण

गीताप्रेसका कार्य प्रारम्भ होनेके बाद भगवत्-प्रेरणासे श्रीमद्भगवद्गीताके प्रचार-प्रसारमें लगे लोगोंके मनमें यह बात आयी कि भारतवर्षमें कहीं एक ऐसा स्थान होता, जिसमें भगवान् श्रीरामकी और भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके, श्रीमद्भागवत, महाभारत तथा श्रीरामायणके वर्णनानुसार सुन्दर चित्र लीलानुक्रमसे संगृहीत होते, साथ ही भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर तथा अन्यान्य देवी-देवताओंके विविध रूपोंके चित्र भी होते, मनमें बात आकर रह गयी। कुछ वर्षों बाद गीताप्रेसमें काम बढ़ जानेसे नया मकान बना, तब उसके ऊपर एक विशाल भवन बनाया गया। पहले सोचा गया कि उसमें कार्यालय रहेंगे, पर पीछे विचार बदला और उसमें सत्संग होता रहेगा—यह निश्चय हुआ। भवन बन जानेपर पूरी श्रीमद्भगवद्गीता संगमरमर पत्थरपर खुदवाकर उसमें शीशा भरवाया गया और दीवालोंपर चारों ओर पूरी गीताके पत्थर क्रमसे जड़ दिये गये। इसीके साथ-साथ संत कबीर, तुलसीदास, दादू, सुन्दरदास, रहीम, नारायणस्वामी आदिके चुने हुए लगभग सात सौ दोहे-चौपाई आदि सुन्दर अक्षरोंमें भवनके बाहर-भीतर दीवालोंपर लिखवाये गये। कोई योजना तो निश्चित थी ही नहीं, जैसे ये सब काम समयानुसार होते रहे, वैसे ही चित्रोंकी बात आयी और यह निश्चय हो गया कि चित्रोंको भी इसमें यथास्थान रखा जाय। 'कल्याण' के लिये वर्षोंसे चित्र बनवाये जा रहे थे। उनका बड़ा संग्रह था। उनमेंसे अच्छे-अच्छे चित्र चुने गये और बहुत-से नये चित्र भवनमें लगानेके लिये ही बनवाये गये। पुराने हस्तनिर्मित चित्र संग्रह किये गये। फिर सबपर फ्रेम लगवाकर उन्हें सजा दिया गया। कुछ नये चित्रोंका काम शेष था, उसे पूरा किया गया और उन चित्रोंके यथास्थान लगनेके उपरान्त हमारे भारतके प्रथम राष्ट्रपति महामहिम देशरत्न डॉक्टर श्रीराजेन्द्र प्रसादजीने वैशाख शुक्ला ८,

विक्रम-सं० २०१२, दिनांक २९ अप्रैल सन् १९५५ को प्रात:काल गोरखपुर गीताप्रेसमें पधारकर इसका उद्घाटन करनेकी कृपा की। इस प्रकार यह अभूतपूर्व 'लीला-चित्रमन्दिर' बन गया।

लीला-चित्रमन्दिरकी विशेषता

भारतवर्षमें अनेक कलाभवन हैं और उनमें बहुमूल्य प्राचीन तथा अर्वाचीन दर्शनीय चित्रोंका संग्रह किया गया है। केवल कलाकी दृष्टिसे देखनेवालोंके लिये उनमेंसे कई कलाभवन नि:सन्देह इस 'लीला-चित्रमन्दिर' की अपेक्षा ऊँचा स्थान रखते हैं। परन्तु उन कलाभवनों या कलामन्दिरोंमें कलाकी दृष्टिसे ही बहुमूल्य तथा दर्शनीय चित्रोंका संग्रह किया गया है, भगवान्‌की लीला-दृष्टिसे नहीं। उनमें कलाकी प्रधानता है, भगवत्-लीलाकी नहीं। वे दर्शकोंको सुन्दर ललित कलाकी ओर आकर्षित करते हैं, भगवान्‌की मधुर-लीला और उनके ध्यान-स्वरूपोंकी ओर नहीं। लीला-चित्रमन्दिरके चित्रोंको देखनेसे भगवान्‌की लीला, हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति और महामनस्वी पूर्वपुरुषोंके पवित्र चरित्रोंका स्मरण होता है और उनकी भक्ति तथा उपासना करनेके लिये दर्शकोंके चित्त आकर्षित होते हैं। इसमें यही विशेषता है। इसमें चित्रोंका निर्माण तथा संग्रह इसी दृष्टिसे किया गया है, जिसमें दर्शकोंको अपने-अपने भावानुसार इष्ट-देवता—भगवान्‌की लीलाओंके, उनके ध्यानयोग्य स्वरूपोंके दर्शन हों और प्राचीन आर्य-संस्कृति तथा पूर्वजोंके प्रति श्रद्धा हो और उनसे प्रेरणा प्राप्त करके वे भगवद्भक्ति तथा मानव-जीवनकी सफलताके लिये अग्रसर हों।

इसमें भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण, शंकर और देवीके सभी रूपोंके दर्शनीय चित्र हैं। इससे यह सभी आस्तिक सम्प्रदायोंके लिये बड़े कामकी वस्तु हो गया है। इतना ही नहीं, इसमें भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर, प्रभु ईसामसीह, संत जरथुस्त्र आदिके भी चित्र हैं जो विश्वके सभी लोगोंके लिये अपने-अपने विश्वासके अनुसार प्रिय हैं। इन सभी दृष्टियोंसे यह 'लीला-चित्र-मन्दिर' सभी लोगोंके लिये सर्वथा दर्शनीय है। इसी दृष्टिसे इसका नाम **'लीला-चित्र-मन्दिर'** रखा गया है। इस ढंगका चित्रमन्दिर भारतवर्षमें यह एक ही है। इसीलिये दूर-दूरसे लोग इसको देखनेके लिये नित्य आते रहते हैं।

इस लीला-चित्र-मन्दिरका भवन लगभग २० फुट ऊँचा तथा लगभग ७१०० स्क्वायर फुटके विशाल आकारका है। इसमें निम्नलिखित वस्तुएँ सुरक्षित हैं—

१— श्रीमद्भगवद्गीताके पूरे १८ अध्याय संगमरमरपर खुदे हुए दीवालोंपर लगे हैं। श्रीगीताके आदिमें एक सुन्दर जयपुरकी बनी रणाङ्गणमें रथपर विराजमान श्रीकृष्णार्जुनके गीता-संवादकी संगमरमरपर खुदी रंगीन मनोहर मूर्ति है।

२— बाहर और भीतर दीवालोंपर संतोंके लगभग सात सौ दोहे, चौपाई आदि लिखे हैं।

३— प्राचीन तथा अर्वाचीन गीताकी ११६७ पुस्तकें हैं। इनमें जगत्की २२ भाषाओंमें मुद्रित गीताके संस्करण हैं। कई प्राचीन हस्तलिखित गीताकी सचित्र पुस्तकें भी हैं।

४— पूरी गीताका प्लास्टिकका बना एक स्तम्भ है, जिसके ऊपर रथ बना हुआ है जिसमें श्रीकृष्णार्जुन विराजमान हैं।

५— हस्तनिर्मित प्राचीन तथा अर्वाचीन चित्र हैं—

(१)	श्रीकृष्ण-लीलाके तथा ध्यानके	**१५१**	**चित्र**	**६८**	**फ्रेमोंमें**
(२)	श्रीराम-लीलाके तथा ध्यानके	**१८२**	,,	**९१**	,,
(३)	भगवान् शंकरकी लीला तथा ध्यानके	**२६**	,,	**१७**	,,
(४)	दश महाविद्या, नवदुर्गा, गायत्री, महालक्ष्मी, महासरस्वती, महाकाली आदिके शास्त्रीय ध्यानके	**४०**	,,	**१६**	,,
(५)	भगवान् विष्णु, भगवान्के अवतार तथा भगवान्के अन्यान्य विभिन्न रूपोंके ध्यानके	**३५**	,,	**१६**	,,
(६)	श्रीकृष्णलीलाके सुन्दर, मेवाड़ी कलाके	**९२**	,,	**९२**	,,
(७)	प्राचीन-अर्वाचीन देशी-विदेशी संतों, आचार्यों, भक्तों, महात्माओंके	**५७**	,,	**३२**	,,
	कुल	**५८३**	,,	**३३२**	,,

पाँच-सात चित्रोंको छोड़कर शेष सभी चित्र बहुरंगे हैं। कई चित्रोंमें सोनेका काम है तथा वे बड़े ही सुन्दर कलापूर्ण हैं।

गीताद्वारके विविध अंगोंके निर्माणमें जिन मन्दिरोंकी कलाका आश्रय लिया गया है, उनका परिचय—

प्रवेश-द्वारके वर्णनमें जिन-जिन मन्दिरोंकी जिस क्रमसे चर्चा आयी है, उसी क्रमसे उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है—

इलोरा—महाराष्ट्रमें औरंगाबादसे लगभग २६ कि०मी०की दूरीपर यह स्थान है। इस स्थानपर १२ गुफाएँ बौद्ध-परम्पराकी हैं। सनातनधर्म-परम्पराकी गुफाओंमें 'कैलास-मन्दिर' सबसे श्रेष्ठ है। इसकी कारीगरी भारतके समस्त गुफा-मन्दिरोंमें सर्वोत्तम मानी जाती है।

अजंता—महाराष्ट्रमें जलगाँव रेलवे-स्टेशनके समीप ही अजंताके बौद्ध गुफा-मन्दिर हैं। सह्याद्रि पर्वतकी घाटीमें यहाँ २९ गुफाएँ बनी हैं। इनमेंसे ४ गुफाएँ 'चैत्य' हैं और शेष 'विहार' हैं। 'विहार' उन स्थानोंको कहते हैं, जिनमें बौद्धभिक्षु निवास करते थे। 'चैत्य' उनका पूजास्थान है। अजंताकी इन गुफाओंके भित्ति-चित्र अपनी सुन्दरता एवं कलाके लिये विश्वमें अद्वितीय माने जाते हैं।

दक्षिणेश्वर—भगवती भागीरथीके तटपर कलकत्ता महानगरीके पास ही दक्षिणेश्वरका काली-मन्दिर है। परमहंस श्रीरामकृष्णदेवने यहाँ वर्षों निवास किया और मन्दिरमें आराध्यपीठपर स्थित महाकालीकी आराधना-पूजा की, यही इस मन्दिरकी सबसे महान् विशेषता है।

काशी—भगवान् शंकरकी नगरी मोक्षदायिनी पुरी काशी (वाराणसी)-का विशेष परिचय आवश्यक नहीं है। वहाँके प्रधान मन्दिर हैं—श्रीविश्वनाथ-मन्दिर और अन्नपूर्णा-मन्दिर। वैसे भगवान् शंकरके कितने मन्दिर वहाँ हैं, यह गिन पाना कठिन है। शिव-मन्दिरोंके शिखरोंपर त्रिशूलकी छटा वहाँ गली-गलीमें देखनेको मिलती है।

द्वारकाधीश-मन्दिर, मथुरा—उत्तरप्रदेशमें मथुरा प्रसिद्ध नगर है। यह सप्तपुरियोंमेंसे एक पुरी है। मथुरामें सबसे प्रधान मन्दिर श्रीद्वारकाधीशजीका है। यह मन्दिर पुष्टिमार्गीय वल्लभ-सम्प्रदायका है। मन्दिरकी रचना बहुत ही कलापूर्ण है।

श्रीजगन्नाथ-मन्दिर, पुरी—उड़ीसाकी राजनीतिक राजधानी तो

भुवनेश्वर है, किन्तु भारतमें भुवनेश्वरसे अधिक प्रख्यात है समुद्रतटका नगर-पुरी। श्रीजगन्नाथधाम—पुरीकी यात्रा करने प्रतिवर्ष देशके विभिन्न भागोंसे लाखों यात्री वहाँ जाते हैं। रथयात्राके समय तो वहाँ एक बड़ा मेला लगता है। पुरीका श्रीजगन्नाथ-मन्दिर बहुत विशाल है। श्रीजगन्नाथजीके मुख्य मन्दिरके अतिरिक्त आस-पास इतने अधिक मन्दिर हैं कि वहाँ एक 'मन्दिरोंका नगर' ही बन गया है। श्रीजगन्नाथ-मन्दिर एवं उसके पासके कई मन्दिर कलाकी दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण हैं।

भुवनेश्वर—उड़ीसामें ही पुरीसे थोड़ी ही दूर यह प्रसिद्ध शिवक्षेत्र है। यहाँका लिंगराज-मन्दिर भारतीय स्थापत्य-कलाका उत्कृष्ट नमूना है।

श्रीजानकी मन्दिर, जनकपुर—जनकपुरधाम-नेपाल-राज्यके तराई क्षेत्रमें पड़ता है। यहाँ जानेके दो मार्ग हैं—बिहारमें स्थित पूर्वोत्तर रेलवेके दरभंगा जंक्शनसे लगभग ४२ कि०मी० पश्चिमोत्तर जनकपुर-रोड नामका स्टेशन है। वहाँसे लगभग ३८ कि०मी० पर जनकपुर है। नेपाल सरकारके रेलवे-स्टेशन जयनगरसे लगभग २६ कि०मी० चलनेपर जनकपुर स्टेशन पहुँचा जा सकता है। इस स्टेशनसे श्रीजानकीजीका विशाल मन्दिर लगभग १.५ कि०मी० की दूरीपर है।

सूर्यमन्दिर, कोणार्क—श्रीजगन्नाथपुरीसे लगभग ३४ कि०मी० दूर उत्तर-पूर्व कोणपर कोणार्क-क्षेत्र है। यहाँका सूर्यमन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। पूरा मन्दिर इस प्रकार बना है जैसे एक विशाल रथ हो। मन्दिर इतना सुन्दर है कि उसकी उत्कृष्ट कलाका दर्शन करने देश-विदेशके यात्री बराबर वहाँ जाया करते हैं। ब्रह्मपुराणके अनुसार यह आदित्य क्षेत्र है जिसके दर्शनमात्रसे व्यक्तिकी मुक्ति हो जाती है।

मीनाक्षी मन्दिर, मदुरा—दक्षिण भारतका मदुरा एक प्रसिद्ध नगर है। यहाँका मीनाक्षी-मन्दिर दक्षिण भारतके मन्दिरोंमें अनुपम माना गया है। द्रविड़ मन्दिरोंकी कलाकी सभी विशेषताएँ इसमें हैं। इसके सभा-मण्डपमें एक सहस्र स्तम्भ हैं और इसके गोपुरम् अपनी भव्यताके लिये प्रख्यात हैं।

स्वर्ण-मन्दिर, अमृतसर—यह मन्दिर एक तालाबके मध्यमें स्थित है। यह सिख-धर्मका मन्दिर है। तालाबमें एक ओरसे मन्दिरतक जानेके लिये पुल बना है। मन्दिर बहुत ही सुन्दर है और उसका शिखर सोनेसे मढ़ा हुआ है।

खजुराहो—बुन्देलखण्डमें महोबासे लगभग ५५ किमी०, छत्रपुरसे लगभग ४४ किमी० और पन्नासे लगभग ४० किमी० दूर उक्त खजुराहो पड़ता है। खजुराहोंमें चँदेल नरेशोंके बनवाये बड़े ही सुन्दर मन्दिर हैं। इनमेंसे कंडरिया महादेवका मन्दिर सबसे प्रसिद्ध है। इस मन्दिरकी भित्तियोंमें इतनी अधिक मूर्तियाँ हैं कि ढाई फुटसे बड़ी मूर्तियोंकी संख्या ही आठ सौसे ऊपर कही जाती है। खजुराहो कलापूर्ण सुन्दर मूर्तियोंका गढ़ है। यहाँकी मूर्तियों तथा छतकी अनोखी कारीगरीको देखकर आजके कारीगर चकित रह जाते हैं।

साँची—मध्यप्रदेशमें भोपालरेलवेके भोपाल जंक्शनसे लगभग ४५ किमी० साँची स्टेशन है। भगवान् बुद्धके प्रधान शिष्योंकी अस्थियोंपर यहाँ स्तूप बने हैं। इन स्तूपोंके चारों ओर जो पत्थरका घेरा (रेलिंग) है, वह बहुत ही सुन्दर है। यह स्थान बौद्ध तीर्थ है।

आबू—राजस्थानमें पश्चिम रेलवेके आबू रोड स्टेशनसे लगभग २९ किमी० की दूरीपर पहाड़पर आबू-क्षेत्र है। यह जैन-तीर्थ है। यहाँके मन्दिर अपनी उत्तम कारीगरीके कारण संसारके श्रेष्ठ कला-भवनोंमें गिने जाते हैं। इन मन्दिरोंकी भित्ति, स्तम्भ, छत आदि सबमें उत्तम कारीगरी है।

महाकाल-मन्दिर, उज्जैन—मध्यप्रदेशकी अवन्तिका (उज्जैन) नगरी सप्तपुरियोंमेंसे एक है। यह मध्यरेलवेका एक प्रधान स्टेशन है। आज जो विक्रम संवत् चलता है, कहा जाता है कि उसके प्रवर्तक शकारि विक्रमादित्य थे और उनकी राजधानी अवन्तिका थी। अवन्तिकाका महाकाल-मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है।

केदारनाथ—यह उत्तराखण्डका प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ भगवान् शंकरका मन्दिर है। केदारनाथकी यात्रा ऋषिकेशसे की जा सकती है।

बुद्धगया—बिहार राज्यमें गयासे ७ मीलपर बुद्धगया क्षेत्र है। यहीं तथागत गौतम बुद्धने बोधिवृक्षके नीचे 'बुद्धत्व' प्राप्त किया था। बुद्धगया-मन्दिर प्राचीन और विशाल होनेके साथ ही स्थापत्य-कलाका एक उत्कृष्ट नमूना है। संसारके विभिन्न भागोंके बौद्ध यहाँ तीर्थयात्रा करने आते हैं।